Chapter-5

पर्व पचम

श्री आत्मानंदजी महाराजजी का गद्य साहित्य

मंगलाचरण---

प्रस्ताविक---

तत्कालीन परिस्थितियाँ—राजकीय, सामाजिक, साहित्यिक, धार्मिक—

विभिन्न परिस्थिति अवलम्बित विविध रचना शैलीका परिचय---कथनात्मक खडन-मडनात्मक,प्रश्नोत्तर, पृथक्करण वर्णनात्मक विश्लेषणात्मक तार्किक-समीक्षात्मक इतिवृत्तात्मक विधानात्मक उपदेशात्मक-

पूर्वाचार्योंके प्रति दृढ आस्था और एकनिष्ठ भक्ति---ग्रन्थोमे पूर्वाचार्योके प्रभाव (विभिन्न ग्रन्थोके उद्धरणपूर्वक)

कृतियोमे ऐतिहासिकता---शैक्षणिक साहित्यिक दार्शनिक, सामाजिक राजकीय क्षेत्रान्तर्गत ऐतिहासिक प्ररूपणाये—

कृतियोंमें निर्भीक सत्य प्ररूपणाये---धार्मिक निरपेक्षता और सा- -क सुधार—

श्री आत्मानंदजी म.के साहित्यकी भाषा शैली---भाषा परिचय, साहित्यमे भाषागत परिवेश-तत्कालीन हिन्दी-भाषा—खडी-बोलीकी प्रधानता—आचार्य प्रवरश्रीके साहित्यमे भाषाशैली वैविध्य-अन्य भाषाओकी झलक-

भाषा प्रकाराधारित व्याकरणिक परिमार्जन---क्रिया रूप, अव्यय रूप, सर्वनाम रूप,—पजाबीके 'आ'कारान्त क्रिया रूपो और सज्ञारूपो—इन सभी रूपोके प्रयोगोका श्रीआत्मानदजीम के साहित्यमे वाक्य प्रयोग रूप उद्धरण-

भाषा संरचना प्रविधि—भाषा गुणगत—विविध शैली परिचय-उपदेशात्मक, विवरणात्मक, प्रतिपादनात्मक, अनुवादात्मक, विश्लेषणात्मक—

भाषाकी सरलता---भाषा माधुर्य---

प्रथम जैन हिन्दी लेखक---

निष्कर्ष---

ॐ ह्रीं ऐं नमः

पर्व पंचम्

श्री आत्मानंदजी महाराजजीका गद्य साहित्य

"षट्खंड भारतधरा वदनेऽच्युतस्य,

वर्षे यथा षड्तवश्च रमाः षड्व्योम:

षड्दर्शनस्य मुनिराज ! तथा त्वयाप,

ज्ञान त्वयि स्फुरति विश्वविकास हेतु !"

प्रास्ताविक - सहस्त्रो वर्षोसे भारतीय जनजीवनके नैतिक-धार्मिक आर्थिक सामाजिक साहित्यिक राजनैतिक और ऐतिहासिक-प्रत्यक्ष क्षेत्रके हमेशा रूप उदय और अस्त होनेवाले ... क्रान्तियोके जिज्ञासु अध्येताका अनुसधान सिद्ध हो सकता है, केवल महापुरुषोके जीवन-चरित्रके अध्ययन-सामाजिक परिवेशमे, महान नेता-युगवीर पुरुषोकी जीवनगाथाओके अनुशीलन-ऐतिहासिक एव राजकीय पृष्ठभूमिमे, महान सत-साधु पुरुषोके जीवनोद्यानका अनूठा आस्वादन-धार्मिक प्रावधानमे और महान साक्षर-विद्वद्वर्योके जीवन-शृगारका प्रासादिक आह्लाद साहित्यिक परिप्रेक्ष्यमे । उन विरल विभूतियो द्वारा जन-समाज और देशकी परिस्थितिका परिशीलन करके उनकी योग्यता और सामर्थ्यानुसार तत्कालीन सामाजिक-राजकीय-धार्मिक विकृतियोका सुधार-परिष्कार और परिमार्जन करते हुए उन्हे अपने चरमलक्ष्य-परमसुख और आत्मिक समृद्धिकी ओर निर्वाध रूपसे अग्रेसर करनेवाली अनुपम- सेवा प्रदान- की गई है ।

ऐसे ही पुनरुत्थानके- अद्यतन युगके साम्प्रत युगीन जनजीवनकी उसतका आगमन सूचित करनेवाले उन्नीसवी शतीके आदोलनोमे भी इन्ही प्रेरक शक्ति स्वरूप महात्माओने अपना योगदान दिया है, जिसमे धार्मिक और राष्ट्रीय (देशभक्तिके) भावोको उल्लेखनीय- स्थान दिया जा सकता है जिनको समृद्ध, सोत्साहित और सचारित करनेका श्रेय उन प्राज्ञो द्वारा निर्मित प्रेरणात्मक और उपदेशात्मक साहित्य निर्माणको दिया जाना चाहिए । इस परिप्रेक्ष्यमे हमारे चक्षुपटलको आकर्षित करते है, उस क्रान्तिकारी आदोलनोकी सलवटको स्वस्थ रूप प्रदाता-युगनिर्माता-बहुआयामी-प्रतिभा सम्पन्न विद्वद्वर्य श्री आत्मानन्दजी म सा का तेजस्वी व्यक्तित्व, ओजस्वी वक्तव्य और धीमयीत्व वाडमयकी विशदता । अत हम उनके साहित्य-सृजनके अधिकाशको सुशोभित करनेवाली गद्य-विधाका परिचय यहाँ प्रस्तुत करते हैं ।

वाड्मयकी दो विधाये-पद्य और गद्य-एक है मर्यादित स्वरूपाकारमे सक्षिप्त या खुर्द, फिर भी तीव्र वेगसे कूदता-फादता, दिलकी चट्टानोको हिला देनेवाला-मतवाला निर्झर, और एक है शात, गभीर, विशद प्रवाहको समेटे हुए महानद या महासमुद्रका अवतार, एकमे भावोकी समर्थ सूक्ष्मता, प्रवल सप्रेषणीयताके साथ अल्पातिअल्प शब्दादि सामग्री द्वारा सुनिश्चित एव मार्मिक अभिव्यक्तिके दृश्य दृग्गोचर होते हैं बल्कि दूसरेमे अनेक विषय वैविध्यतानुरूप भावनासे आनुषगिक वैचारिक भरमारोको प्रवाहित होनेके लिए अनेक प्रवाह मार्गोका विस्तीर्ण पट फैला हुआ है एकमे कवि-कौशलका अगणित अलकार-प्रतीक-बिम्ब-छद रस रागादि रूपमे लहलहाता है ... दूसरेमे कृतिकारकी कसौटीके दर्शन होते है - क्योकि गद्यके विस्तृत साहित्य फलक पर फैले सतुलित तत्त्वोके, बुद्धिबलसे निरिक्षित विचारधाराको सुनिश्चित प्रवाहमे सुगठित शैली और मनोवैज्ञानिक विशिष्टताओके साथ प्राभाविक रूपमे प्रभावित करना दुरूह कार्य अवश्य है । एक कुशाग्र लेखक बुद्धि कल्पना और सवेदनाओसे अपनी रचनाको प्राजल बनाते हुए, पाषाणसे प्रतिमा-रचना रूप हस्तसिद्ध कला द्वारा पाठककी अदम्य अभिलाषाओको वेदना-सवेदनाओको झकझोरकर स्वयके अभीष्ट लक्ष्यको सिद्ध कर सकता है । गद्य लेखकके मस्तिष्ककी उदभावना अभिभावकके हृदयगत भावोको सवेदित करनेवाले सार्थक आलेखनसे साधना और शिवत्वके सामजस्य रूप भीतरसे सुदर और बाह्य परिवेशमे सम्माननीय साहित्य सृजन निष्पन्न करती है । लेखकका स्वाभाविक सरल-मधुर और लाघवयुक्त, निपुण

बौद्धिक कल्पना वैभव, सूक्ष्म भावोको वायु लहरियों सदृश स्पंदित कर र· ·ा है, वाङ्मयको जीवतता-मार्मिकता एव तर्क सगततासे समृद्ध बनाता है और विवक्षित कृतिको चमक-दमक, रमणियता और रुचिरता, कोमल स्वाभाविकता, मनोवैज्ञानिकता और ध्वन्यात्मकता अर्पित करता है । ऐसे सक्षम साहित्य मनीषीकी सर्जन-सृष्टिमे विहार कर 'ूर्व तत्कालीन वातावरणका परिचय अस्थानीय न होगा ।

तत्कालीन परिस्थितियाँ :- तत्कालीन जनजीवन रूपी क्षेत्रमे नूतन विचारधाराओके बीज वपन होनेके पश्चात् नवीन भावधाराओकी वृष्टि, आतरिक क्रान्तिकी सकपकाहट और आदोलनोंकी गरमीके कारण नूतन साहित्यिक अकूर प्रस्फुटित हुए, जिसके सायेमे साम्प्रतकालीन परिवर्तनशीलता-प्रगतिशीलता और प्रच्छन्न प्रवृत्तियोने साहित्यिक-सामाजिक-सास्कृतिक (धार्मिक) व राजनैतिक क्रान्ति एव नवचेतनाके उद्‌भावको प्रसृत किया । उन तत्कालीन परिस्थितियोका विश्लेषण इस प्रकार किया जा सकता है ।

राजकीय परिस्थितियाँ–यद्यपि भारतके नैतिक-राजनैतिक-सामाजिक-आर्थिक-धार्मिक आदि प्रत्येक क्षेत्रमे पतनकी श्रेणियोके मडाण योरपियोके पदार्पण पूर्व ही हो ुका था, फिर भी अठारहवीं शतीके उत्तरार्धमे उसका स्पष्ट रूप उदीयमान आदित्यकी तरह झलकने लगा । ब्रिटिशरोकी नकली नम्रता-खुशामदखोरी-कपट और रिश्वतखोरी, साथ ही हिन्दुस्तानियोका मिथ्या स्वाभिमान, पारस्परिक फूट और आतर्सघर्षके परिणाम स्वरूप मुगल-मराठा-सिक्ख-राजपूतादि सभीको येन-केन-प्रकारेण परास्त करनेवाले ब्रिटिशरोका प्रभाव समस्त भारतवर्ष पर–कश्मीरसे कन्याकुमारी और बर्मासे पश्चिमोत्तरी सीमा प्रात पर्यत विस्तीर्ण हुआ । अत अग्रेजशासक मदोन्मत्त बने । फलत उनकी मनस्वी और उच्छृखल नीतियोसे वाज आये हुए, असतुष्ट-अनेक देशी रजवाडोने परस्पर एकत्रित होकर ई स १८५७मे व्यापक रूपमे विद्रोह किया । लेकिन ईस्ट इन्डिया कपनीके चुगालसे अपना पल्ला छुडाकर भारतीय जनजीवन ब्रिटिश साम्राज्यके जालमे बूरी तरह उलझ गया, जिसने भारतीयोके आर्थिक-शैक्षणिक-सामाजिक-धार्मिक-व्यावहारिक-प्रत्येक क्षेत्रके मूलको ही परिवर्तित करनेमे अक्सीर इलाजकी भूमिका अदा की ।

भारतीय उद्योगधधोंको अमानुषिक रूपसे नष्ट-भ्रष्ट करके प्रजाका आर्थिक शोषण प्रारभ हुआ, परिणामत उनके देशमे भारतीय स्वर्णकी वर्षा होने लगी और इग्लैडकी औद्योगिक क्रान्ति सफल हरियालीको प्राप्त हुई, जबकि भारतीय औद्यमिक हालातमे दारिद्रता-बेकारी-विवश निराशा और हताशाके पजोका प्रसार हुआ । ब्रिटिश उपनिवेश बने भारतके लिए अग्रेजोने अपनी नूतन प्रशासकीय नीतियो द्वारा आर्थिक एव शैक्षणिक प्रणालिकाओमे आमूल परिवर्तन किये, जिसका असर समाज जीवन और धार्मिक क्षेत्रान्तर्गत भी होने लगा । भारतवासी भी इन नूतन परिस्थितियोमे जीवनका नया अदाज सोच समझकर पेश करने पर विवश हुए । इन सभी परिस्थितियोका नतीजा यह हुआ कि तग आर्थिकता-विक्षुब्ध सामाजिकता-विद्रोही एव उच्छृखल अधार्मिकता-शैक्षणिक स्वच्छदताकी जन जीवनको झुलसानेवाली चिनगारियाँ चमकने लगी, जिसने अधिकतर मानवीय सुख-दुखको साहित्यके माध्यमसे जन जीवनमे उजागर करनेवाली एक नयी चेतना प्रदान की । सामान्य लोकजीवनसे जुडनेवाली नये युगकी भावाभिव्यक्तिके लिए आधुनिक जागृत चेतनासे सक्षम बननेवाली, जन साधारणमे व्याप्त खडी बोलीमे गद्यमय प्ररूपणाओने आकार लिया। यह साहित्यिक उत्थान आधुनिक कालके प्रमुख साहित्यकार भारतेन्दुजीके नामसे प्रसिद्धिमे आया ।

सामाजिक परिस्थितियाँ–आधुनिक भारतमे उन्नीसवी शताब्दीमे बहुमुखी पुनरुत्थानका प्रारभ हुआ, जिनके अग स्वरूप सामाजिक उत्थानको भी प्रश्रय मिला । पसापूर्वसे अनेक जाति उपजातियोमे विभक्त भारतमे पारस्परिक एकताका सर्वदा अभाव था । परिणाम यह आया कि, स्थानीय भारतीय, बाह्य आक्रामको–मुस्लिम, ईसाई आदिके सामने पराजित होते गये । इन सबका गहरा प्रभाव भारतीय समाज व्यवस्था और अर्थ व्यवस्था पर पडना अत्यन्त स्वाभाविक था । लेकिन, सोलहवी शती पर्यतके विजेता सभ्यता और सस्कृतिके क्षेत्रमे अविकसित या अर्धविकसित थे, अत उन्होने उत्कृष्ट भारतीय सस्कृतिके साथ समन्वय करके उसे अपनाया और भारतीय समाजमे घुलमिल गये । मुस्लिमोने धार्मिक आक्रामकताके बल पर हावी होनेका

प्रयास किया, लेकिन कुछ धर्मान्ध शासकोके अतिरिक्त अन्य सभी समदर्शी शासकोको सामाजिक आदान प्रदानकी स्वस्थ परिपाटी आजमाकर समन्वयका ही स्वीकार कर लेना पडा । इस प्रकार सामाजिक स्वरूपमे अविकसित मुगल शासकोके विजयमे भी भारतीय सभ्यता-सस्कृतिसे पराजित होनेके भाव चिह्नित होते हैं । उनके आक्रामक-धार्मिक जनूनके कारण भारतीय रूढि परम्परामे और सामाजिक एव शैक्षणि क्षेत्रोमे भय और आतककी लहरसे निराशा और हताशा छा गयी । उन क्षेत्रोमे विकासशील प्रगति पर तो विराम-चिह्न ही लग गया, साथ ही कुठित भावनाओको सहन करने पर उन्हे विवश बनना पडा। मुस्लिम शासनके कारण बाल विवाह, पर्दाप्रथा सती प्रथा और स्त्री-पुरुषकी असमानतादि नारीदमनके विरूप दृश्य दृष्टिगोचर होने लगे

तदनन्तर मुगल शासनके स्वर्णिम युगमे ही स्वार्थी व्यापार [illegible] आगमन आक्रमण और आपात स्थितिका निर्माण आकार ले रहा था । परिणामत शनै शनै पूजीवादी अग्रेजोके शासनकालमे-उन्नीसवा शतीमे सभ्यता और सस्कृति, सामाजिक और शैक्षणिक आर्थिक और राजकीय, कृषिक और औद्योगिक आदि अनेक परपरित एव व्यावहारिक क्षेत्रोमे आमूल परिवर्तन हुए । अग्रेजोने निजी स्वार्थके लिए भारतीय समाज और देशको लूटा, व्यापार नष्ट किये गृह-उद्योगादि हुन्नर और अन्य जातीय व्यवस्था-ग्रामीण व्यवस्था तूट गई, एव जमीदारी प्रथा लागू होनेसे जमीनका क्रय-विक्रय और कृषिका व्यावसायिक रूप एव महाजनी सभ्यतादिमे ग्राम्यजीवन उलझ गया । यातायातकी सुविधा और औद्योगिक क्रान्तिके पोषण रूप क्रय-विक्रयके लिए बाजारोका अस्तित्व सामने आया । ग्रामीण उद्योग-धधे तूटनेसे अधिकाश समाजका जीवनाधार केवल कृषिकर्म रह गया । इन सभीके शिरमौर रूप तत्कालीन प्राकृतिक प्रकोप-अकाल-महामारी आदिके नागपाशमे बधा भारतीय समाज राजकीय प्रभावो-पचायती सरल ग्राम्य-व्यवस्थाके स्थान पर जटिल कोर्ट-कचहरियोके जालसे भी त्रस्त हो उठा था ।

शहरी समाजकी परिस्थितियाँ भी ग्रामीणोसे अच्छी नही थी । शहरी जनजीवनमे भी पुनरुत्थानकी एक नयी लहर—शायद जिसे 'राष्ट्रीय जीवनकी बसत' उपनाम दिया गया था—और प्रगतिशीलताकी चकाचौंध अपना रग जमा रही थी, जिनके कर्णधारके रूपमे अनेक राष्ट्रीय और धार्मिक, सामाजिक और शैक्षणिक या साहित्यिक नेता-प्रणेताओके दर्शन हमे होते है-यथा—*ब्रह्मसमाज सस्थापक तार्किक और बौद्धिक राजा राममोहनराय, प्रार्थना-समाजके सूत्रधार-मेधावी-विधिवेत्ता / वैज्ञानिक विचार शैलीयुक्त—पूर्वग्रहोसे मुक्त, पुनरुत्थान वादियोके विरोधी, समान मानवाधिकारवादी और आतर्जातीय विवाहक रक्षकार श्री महादेव गोविद रानाडे आर्यसमाजके प्रवर्तक—मूर्तिपूजा उत्थापक और एक वेदमत एव एकेश्वरवादक सस्थापक स्वामी दयानद सरस्वती थियोसोफिस्ट श्रीमति एनी बेसेट; साधारण ब्रह्म समाज और नववेदान्त सचालक श्री केशवचद्र सेन गरीब-गवार (आत्मिक समृद्धि और सामर्थ्यसे ऋद्धिवान्) अनपढ, रोगी-मित्रहीन, मूर्तिपूजक-हिन्दुभक्त, श्री विवेकानदजीके गुरु और समस्त बगालको झकझोरनेवाले स्वामी रामकृष्ण परमहस, विश्वधर्म परिषद, चिकागोमे हिन्दु सस्कृतिकी शान और आनको पुन स्थापित करनेवाले-तन, मन आत्मिक शक्तिवान् और आत्म सम्मान एव राष्ट्रीय गौरव प्रदाता-धर्मके हिमायती और जाति-सम्प्रदाय अस्पृश्यतादिके विरोधी, गरीबोके बेली रामकृष्ण मिशन के प्रस्थापक श्री विवेकानदजी स्वामी रामतीर्थ, ईश्वरचद्र विद्यासागर, श्री प्रेमचद राय लाला लाजपतराय, स्वातत्र्य सेनानी बाल गगाधर तिलक; गोपालराव व मदनमोहन मालविया आदि ।*

साहसिक, सेवाभावी देशभक्त और आत्म बलिदानके लिए तत्पर सभी महापुरुषोके भगीरथ पुरुषार्थके परिणाम रूप भारतमे नवजीवनका सचार हुआ । उनका लक्ष्य था पश्चिमीकरण किये विना ही प्राचीन वैभव-समृद्धि और पवित्रता युक्त भारतकी स्वतत्रता । परस्पर विरोधी दर्शित होनेवाले भारतीय जनजीवनके उन हितस्वियोकी प्रवृत्तिके प्रवाहोकी तेजी-मदीके कारण कभी सामाजिक सुधारको प्राधान्य मिलता था तो कभी शैक्षणिक क्षेत्रको, कभी राजकीय चहल-पहलको अग्रीमता प्राप्त होती थी, तो कभी धार्मिक प्रवाहोका गान गूजीत होता था । अततोगत्वा उन नेताओकी मूल रूपसे दो प्रकारकी प्रवृत्तियाँ हमे उपलब्ध होती

है राष्ट्रीयतावादी और स्वच्छंदतावादी । "**दोनोंके मूलमें वय कता, अतीतके गौरवका भाव, विदेशी सत्ताके विरुद्ध आक्रोश, गाँवोंकी बढ़ती गरीबीके प्रति सहानुभूति-स्वतंत्रता और समानताके प्रति आग्रह आदि प्रवृत्तियाँ क्रियाशील थीं विस्मृतिके गर्भमें विलीन भारतीय साहित्य, कला, ज्ञान-विज्ञान, दर्शन, वास्तु, स्थापत्य कलादिके पुनरुद्धारक-पुरातत्त्ववेत्ता और पुरालेखविदोंने अतीतके गौरवके प्रति जागृति फैलानेमें अपना महत्त्वपूर्ण योगदान दिया, जिससे समस्त संसारमें भारतीय संस्कृतिका गौरव और आत्मसम्मान, पाश्चात्य संस्कृतिके सामने उन्नत मस्तक हो सका ।**"[2]

इसके साथ ही शिक्षण संस्थाओके स्वरूपोमे भी आमूल परिवर्तन हुए, जो आधुनिकीकरणके उस कालमे पाश्चात्य शिक्षा प्रणालीको अंगीकार करके पश्चिमी ज्ञान-विज्ञानमें परिचय करनेके लिए लक्ष्य करके किये गये । पाश्चात्य शिक्षण प्रणालिकासे रीति-नीति, आचार-व्यवहार वेशभूषादिमे सीमातीत परिवर्तन स्वार्थी वैयक्तिकता और उद्दंड उच्छृंखलतादिका साम्राज्य स्थापित हुआ तो अस्पृश्यता और जातिप्रथाका विरोध-नरनारीकी समानता-स्वतंत्र स्वच्छदतादिका समर्थक एक नया ही मानवतावाद अस्तित्वमे आया । इन सबके मूलमे परिवर्तीत अनेक पारस्थितियाँ ही हेतुभूत हुई थी ! अंग्रेजोके ही स्वार्थवश स्थापित की गई आधुनिक अर्थ व्यवस्था यंत्रयुगीन औद्योगिकरण-सचार सुविधा-प्रेस(मुद्रण) सुविधा-नयी शिक्षाप्रथा आदिसे भारतीय समाजका कुछ हित भी अवश्य हुआ । भारतीय समाज प्राचीन परिपाटीकी स्थिर व्यवस्थाओसे मुक्त होकर स्वतंत्र गत्यात्मकताका अनुभव करने लगा और नूतन परिवेशमे ढलने लगा । मुगलोकी धार्मिक असहिष्णुता और आक्रामक अत्याचारोके कारण हिन्दुओका जो धार्मिक शोषण हुआ था, ब्रिटिशरोंके शासनकालमे अधिकाशत उनसे मुक्ति प्राप्त हुई । श्री आत्मानदजी म.के उद्गारोमे उनकी प्रशसा देखे—"**हम धन्यवाद देते हैं अंग्रेजी राजको, जिनके राजतेजसे सिंह-बकरी एक घाट पानी पीते हे । किसी मतवालेकी शक्ति नही, जो दूसरे धर्मवालेंको गरम आंखोंसे देख सकें ।**"[3]

उस सुधारणा रूप सक्रान्ति कालमे अधिकाश समाज-सुधारक नेतागणने, समाज सुधारके अति आवश्यक अग 'धर्म' पर ही बल देते हुए क्रान्तिकी मशाल प्रज्ज्वलित की । राजा राममोहनराय जैसे शुद्ध बुद्धिवादीको भी सतीप्रथाके उन्मूलनमे धर्मशास्त्रोकी गवाही देनी पड़ी, तो ईश्वरचद्र विद्यासागर द्वारा सिद्ध किया गया कि, वैधव्यका कोई विधान धर्मशास्त्रोने नही किया है : श्री दयानदजी द्वारा समाज सुधारको वैधता देनेके लिए वेदोके मनघडत-विपरितार्थ भी किये गए इस तरह सामाजिक कुरूढियोको उच्छिन्न करनेमे अतीतकी गौरवान्वित विरासतका ही किसी न किसी रूपमे उपयोग किया गया जिसके परिणाम स्वरूप भारतीय जन-समाजका आत्म सम्मान जागृत होकर पाश्चात्य रूखसे बराबरीका सामना करने और अग्रेजी शासनकी परतत्रतासे स्वतत्र बननेके स्वप्न देखने लगा।

इतना होने पर भी हम कहेगे कि इन सभी नवनिर्माण-सुधार-उत्थान और उत्क्रान्तिका श्रेय स्वय भारतीय संस्कृतिकी मजबूत नीव-पारपरिक गौरव गाथाओका सबल और निजी विशिष्टताये ही है क्योंकि जातीय पुनरुत्थानके लिए समाजको अन्यके अनुभवसे लाभ मिल सकता है, लेकिन सर्वथा नवीन साचेमे उसे नही ढाला जा सकता । यह तो स्पष्ट ही है कि, कोई भी जाति पूर्ण रूपेण निजी विशिष्टताओका न त्याग कर सकती है, न अन्यमे पूर्ण रूपेण विलीन हो सकती है । इसी तथ्यके अनुरूप भारतीय जातीके अनुपम आध्यात्मिक और नैतिक तत्त्व आधुनिक-भौतिक जडवादके तरंगी तूफानो या तो विप्लवकी आंधियोमे भी नष्ट नही हुए क्योंकि उनमे स्थिरता बक्षनेवाली अत्यत गहरी सशक्त धार्मिक और सास्कृतिक जडे विद्यमान थी, जो उन्हे विस्फोटक प्रभात रूप मृत्यु सकटको भी धकमा देकर स्वयके गौरवको अमरता बक्षनेका सामर्थ्य रखती थी । अत सामाजिक और सास्कृतिक एव शैक्षणिक-पुनरुद्धारसे भारतीय जनजीवनमे नये सचार प्रसारित हुए । उन समाज सुधारको, आदोलनकारो अथवा विप्लवकारियो और नेता-प्रणेतादिके द्वारा कुरूढि, अधविश्वास, विपरित आचरणाओ, सामाजिक कुरीति-रिवाजो, असमानताओ आदिके विध्वस करते हुए, धार्मिकता, सास्कृतिकता और सामाजिकताकी सामर्थ्यशाली नीव पर आधुनिक पुनरुत्थानके

साधनोसे नूतन प्रासादका निर्माण करनेका साहस किया गया । अतः जनजीवनका व्याप संकीर्णतासे सुविशालताकी ओर, प्रमादसे पुरुषार्थकी ओर, अंधविश्वाससे वैज्ञानिकताकी ओर विस्तारको प्राप्त हुआ। *साहित्यिक*—धार्मिक-राजकीय एवं सांस्कृतिक साहित्यकी गद्य और पद्य रचनाओके लिए तत्कालीन विभिन्न साहित्यकारोने हिन्दी भाषाका उपयोग किया । सभी क्षेत्रोकी भाँति युग परिवर्तनके साथ साहित्य परंपराओने भी मोड बदला हिन्दी साहित्यमे नयी चेतना और नवजागृति—राष्ट्रीयता, सामाजिकता, सांस्कृतिक सभ्यताके नये आयामो-नूतन प्रयोगो और नवीन विशेषताओके रूपमे प्रकाशित हुई । भाषा और भावनाकी दृष्टिसे यह संक्रमण काल होनेसे भाषा और साहित्यको ठोस भूमिगत स्थिरता प्राप्त हो रही थी । इसी समय देशवासियोको स्वदेशकी अतीत गौरवगाथाकी ओर सावधान करनेवाले और नव जागरणका शंख फूंकनेवाले भारतेन्दुजी और उनके सहयोगी राष्ट्रीय चेतनाके उदीयमान नक्षत्रके रूपमे दृश्यमान हुए और तत्काल साहित्यने मानो करवट बदली । भारतेन्दुजी आधुनिक साहित्यके जन्मदाता या अग्रदूत माने गये ।

स्वयके यात्रानुभवोसे चेतनवत बने देशप्रेमके कारण पत्रिकाओके प्रवर्तन और *कवि समाज 'कवितावर्द्धिनीसभा'* आदि संस्था स्थापित करके उस कला-प्रशसक और उदार आश्रयदाताने हिन्दी साहित्यकी रचना करके और उसके प्रचार-प्रसारके लिए एक मंडल-सा जमघट निर्माण किया, जिससे हिन्दी भाषा और साहित्यको स्थिर और स्थापित होनेमे सामर्थ्य प्राप्त हुआ । वे अपने आपमे एक संस्था सदृश विशाल और बहुमुखी प्रतिभाके स्वामी थे, जिनकी गद्य और पद्यमे समान और समांतर गति थी । **"उन्होंने विशाल पैमाने पर, बहुसंख्यक, विभिन्न विषयक और अनेक विधाओंमें साहित्य सृजन करके इस बातको प्रमाणित कर दिया था कि, वे आधुनिक हिन्दी साहित्यके लिए मधुमास बनकर आयें, जिन्होंने सभी रसोंकी सृष्टि की ।"[४] "भारतेन्दु सहज प्रतिभा सम्पन्न थे, अतएव उनकी वाणीसे भाषा साहित्यकी समस्त परंपराओंका काव्य अपने प्रकृत रूपमें प्रस्फुटित होता था । उन्होंने खड़ी बोलीमें सुंदर रचनायें की, तो ब्रजमें भी मानो सूर-बिहारी या देव-पद्माकरकी विशेषता लेकर आये; लोक प्रचलित प्रगीनशैलीमें हास्य-विनोद या व्यंग्यपूर्ण काव्य रचा, तो होली-कजरी-लावणी-भजनादि रूपोमें भी स्वर भरे ।"[५]**

नवयुगीन संगठन और औद्योगिक उन्नतिसे निष्पन्न नयी चेतनाके स्वर शायद विद्रोही नहीं, फिर भी देशोन्नतिके लिए उद्‌बोधक और देशभक्तिको उकसाकर जन जागृति करवानेवाली जोशीली भावाभिव्यक्ति रूप थे । तत्कालीन पत्र-पत्रिकाओके प्रारम्भ और प्रवर्तन एवं अनूदित गद्य साहित्यके संपर्कसे नाटक, उपन्यास, कहानी, निबन्ध, यात्रावर्णन, जीवन चरित्र, आलोचना-ऐतिहासिक भौगोलिक, धर्मशास्त्रीय, वैज्ञानिक, वेदान्तादिके सिद्धान्त निरूपणवाला दार्शनिक आदि गद्यसाहित्यके उद्योत सवर्धन होता रहा, जिनके स्फुट या अस्फुट, अग्रगण्य या नगण्य रूप भारतेन्दुजी और उनकी मंडलीके प्रतापनारायण मिश्र, 'प्रेमघन', ठाकुर जगमोहनसिंह बालकृष्ण भट्ट, बालमुकुंद गुप्तादि साहित्यकारो एवं परवर्ती लेखकोमे प्राप्त होते हैं भारतेन्दु-पूर्व गद्य शैलीमे (१) ब्रजभाषापन या पंडिताऊपन, (२) संस्कृत गर्भित (३) अरबी, फारसी शब्दयुक्त खडीबोलीके तीन रूप प्राप्त होते है, लेकिन भारतेदुजीने गद्यकी नवीन शैलीकी नींव डाली जो परिमार्जित सर्वग्राह्य-चलती भाषाका रूप लिए उत्कृष्ट गद्य साहित्य-सृजन योग्य थी ।

निबन्ध विधा—हिन्दी साहित्यकी निबन्ध विधाकी ओर दृष्टिपात करने पर हमे परिचय प्राप्त होता है बालकृष्ण भट्ट और प्रताप नारायण मिश्रके विचारात्मक, वर्णनात्मक, कथात्मकादि अनेकविध निबन्धोका गद्यमय साहित्य निर्माणमे महत्त योगदानका, बालमुकुंद गुप्तजीकी मुहावरेदार नैसर्गिक, व्याकरण शुद्ध, दृढ भावाभिव्यजनाकी अभिव्यक्तिके सामर्थ्ययुक्त प्रौढ भाषा शैलीका, माधुर्य और कान्तिगुण युक्त, संस्कृत-अंग्रेजीकी विद्वत्तासे झलकती ठाकुर जगमोहनसिंहजीकी रचनाओमे विलक्षण मनोहरताका श्री निवासदासजीकी गद्यशैलीकी फारसीके तत्सम शब्द युक्त संयत-सुबोध परिपक्वताका । *नाटक विधा*—ठीक उसी प्रकार टूटी हुई संस्कृत नाट्य परंपरा और रंगमंच—जो नवनिर्माण योग्य थीं—उसके पुनर्जीवन प्रदाता भारतेंदु युगमे निजी मौलिकताको लेकर और अनुवादित रूपमे विविध नाट्य रूपोकी उद्‌भावना की गई, जिनके द्वारा हिन्दी गद्यका समुचित

प्रवर्तन, देशभक्ति भावनाको जागृति, हास्य या व्यंग्यात्मक रूपमे धार्मिक और सामाजिक कुरूढियो एव **कुरिवाज़ो पर कुठाराघात, भगवद् भक्ति आदि भावोकी प्ररूपणा पौराणिक, ऐतिहासिक, सामाजिक, धार्मिक या काल्पनिक कथानकोको लेकर की गई ।** *उपन्यास*--गद्य साहित्यकी महत्त्वपूर्ण शाखा-उपन्यासके क्षेत्रमें श्री निवासदास, जगमोहन सिह, बालकृष्ण भट्ट, राधाकृष्णदास, अयोध्यासिह उपाध्याय, अबिकादत्त व्यास, देवकीनदन खत्री, गोपालराम गहमरी आदि लेखको द्वारा सामाजिक, तिलस्मी, अय्यारी, जासूसी, ऐतिहासिकादि अनेक प्रकारके काल्पनिक, भावप्रधान, उपदेशात्मक, हास्य-व्यग्य प्रधान, प्रणय निरूपणात्मक, घटनात्मक, वर्णनात्मक, कौतुक प्रधान उपन्यासोकी रचनाये सस्कृतनिष्ठ अलकृत भाषायुक्त चलती-मुहावरेदार-विविध भाषा शैलियोमे की गई । इनके अतिरिक्त *कहानियॉ, आलोचना, जीवन चरित्र, यात्रा वर्णन आदि* विविध साहित्य विधाओका भी उस युगमे किसी न किसी रूपमे सूत्रपात हुआ । इन्हे वेगवान बनानेवाले पत्रिका साहित्यका भी अत्यधिक महत्त्व है ।

उपर्युक्त साहित्य विधाओके साथ साथ वाड्मयकी अन्य उपयोगी एव महत्त्वपूर्ण विधाओका भी आलेखन हुआ, जिसमे *भौगोलिक, वैज्ञानिक, राजनीति एव अर्थनीतिकी प्ररूपक रचनाये, अनेक ललित एव उपयोगी कलाओका, निवेशक-कलात्मक साहित्य, व्याकरण, कोश, न्याय, तर्क, धर्म, दर्शनादि अनेकविध वाड्मयका प्रादुर्भाव*--मुद्रणयत्रके उपयोगके कारण और पत्र-पत्रिकाओके प्रचलनके कारण हिन्दी साहित्यका विशद मात्रामे निर्माण-प्रचार और प्रसार इस युगमे हुआ ।

तत्कालीन-युगीन साहित्यके अध्ययनसे हमे अनुभव प्राप्त होता है कि भारतेदु युग प्राचीन और अर्वाचीनके सधिकाल पर स्थित है, अत उस युगकी चिन्तनधारा दो प्रवाहोमे बहती है - (१) अतीतके गुणगान और (२) पाश्चात्य वाड्मयकी प्रेरणा ग्रहण करके सामाजिक कुप्रथाओके प्रति गहरा असतोष । फिर भी दोनोका स्वर विद्रोहात्मक नही, समन्वयात्मक ही रहा है । कही पर तो विक्टोरियाकी सुधारवादी शासन-नीतिका गुणगान हैं, तो कही समाज विकासकी आवश्यकता और जातीय गौरवयुक्त देशभक्तिकी बुलदी है । **"इस युगकी कविताका बहुल अंश वस्तु निष्ठता, बुद्धिवादिता, वर्णनात्मकता और इतिवृत्तात्मकतामे युक्त है; किन्तु कुछ कवियोंके काव्यमें सौंदर्यवादी जीवनदृष्टिका उन्मेष भी मिलता है । अपने कृतित्वको मानवताके बृहत्तर आयामोंके साथ जोड़नेकी दिशामें कवियोंकी अपेक्षा गद्यकार ही अधिक सक्रिय रहे है ।"**[5]

ब्रिटिश शासनके प्रति विरोधका भाव प्राय प्रत्येक साहित्यकारके मनमे विद्यमान था । देश और समाजके हितकी भावनासे सभी भावित थे । साहित्य सर्जनकी दृष्टिसे हिन्दी गद्यकी प्राय सभी विधाओका सूत्रपात इसी युगमे हुआ, विशेषत नाटक एव निबन्ध-इन दो विधाओमे अभूतपूर्व सफलता प्राप्त हुई। व्यापक जागरणका सदेशवाहक इस कालका साहित्य जीवनकी गतिके साथ जुडा और साहित्यकारोके अदम्य उत्साह, हिन्दी भाषाके प्रति अटूट निष्ठाके साथ पत्र-पत्रिकाओके प्रकाशनके कारण उसकी परपरा वेगवान हो सकी, **"उन्होंने हंसते-हंसते अपनेको उत्सर्ग करके हिन्दीके विशाल भवनका निर्माण किया, जिसे सजाने-संवारने और मूल्यवान उपकरणोंसे अलंकृत करनेका कार्य द्विवेदी युगके साहित्यकारोंने किया ।"**[3]

धार्मिक--साहित्यके सदर्भमे 'आधुनिक काल' शब्दसे दो दृष्टिकोण फलित होते हैं-(१)मध्यकालका परवर्तीकाल-जिसमे रूढिवादी जडता और धार्मिक स्थिरता या एक रसता रूप अवरोधोसे मुक्त नूतन गत्यात्मक चेतना प्रदर्शक साहित्य रचनाये और (२) अध्यात्मसे आधिभौतिक विचार सरणी व्याप्तकाल, जिसमे स्वयकी सुध-बुध विसर्जित करा देनेवाली पारलौकिक आस्थासे अत्यधिक आच्छन्न पर्यावरणको नयी चिंतनधाराके दार्शनिक एव धार्मिक चिंतको, प्रसारको एव प्रचारको द्वारा सुधार-परिष्कार और पुनराख्यायित करके नूतन-आधिभौतिक दृष्टिकोणसे प्रस्तुतीकरण प्राप्त होता है । केवल धार्मिक एकतामे आबद्ध भारतीय समाज उस युगमे राष्ट्रीय एकताके प्रति झुक रहा था, तो प्राचीन जाती प्रथाये नये ही आर्थिक वर्गों--उच्च(अमीर)वर्ग, मध्यम वर्ग, निम्न(श्रमिक)वर्ग--मे विभाजित या परिवर्तित होने लगी थी, जिनका उन पुनरुत्थानके सक्रान्तिकालमे अत्यन्त महत्त्वपूर्ण योगदान माना जा सकता है । उन आर्थिक परिवर्तनोने अनेक उलझनो और समस्याओको

जन्म दिया, जिन्हें स्वज्ञानके लिए नयीनया विचारधारा और विविध दृष्टि बिन्दुओका सहारा लेनेके लिए **विवश होना पड़ा । भारतीय ज्ञान-विज्ञान या आचार-विचारका केन्द्रबिंदु पारलौकिक-आध्यात्मिक-शाश्वत या चरम लक्ष्य (मुक्ति)को स्पर्शता है और आधुनिकताके प्रवाहने भौतिक-इहलौकिक-या स्वकेन्द्रित, साम्प्रतकालीन लक्ष्यको साध्य बनाया था । फलत विद्या, सुयोग्य वैशिष्ट्यवान्** या जनसमुदायके लिए ही नही, प्रत्युत सर्व सुलभ बनी, जिसे पुनरुत्थानवादियोने प्रगतिका चिह्न मान लिया।

इन सभी गतिविधियोके परिणाम स्वरूप सर्वसुलभ विद्याधारी अद्यतन या अफलातून प्रगतिशील समाजने अज्ञानमय जडता और भौतिक गत्यात्मकता एव इहलौकिक नयी उदभावनाओके मार्गके अवरोधक-अनन्य और अद्वितीय भारतीय दर्शन-ज्योतिष-विज्ञान-गणित-उत्तम काव्यशास्त्र और उत्कृष्टतम (सर्वोपरि) धर्मशास्त्रोको विनउपयोगी गतानुगतिक अपरिवर्तनशील-निरर्थक मानकर उनकी तरफ प्रश्नार्थ धर दिया और 'आधुनिकता' नामधारी उच्छृखल, वैयक्तिक, बधन मुक्तिकी विधाता और सामाजिक विखरावका प्रणेता, व्यक्ति स्वातत्र्यताका आदर-सम्मान किया । **'नीत्शेकी 'ईश्वर मर गया'-की उद्घोषणासे बौद्धिक जगतमें क्रान्तिकारी परिवर्तन आया।** धर्मग्रन्थोकी निर्धारित पाप-पुण्य, धर्माधर्म, अच्छे-बुरेकी प्रामाणिक कसौटियॉ समाप्त हो गई, और प्राचीन ग्रन्थोका विघटन हो गया । धार्मिकता और 'धार्मिक'को रूढिवादी-जड-हीन या हास्यास्पद मानकर ,तिरस्कृत किया गया और परमार्थ-पारस्परिक सम्मान, विवेक-विनयशीलता-अनुशासनादिकी जडोको जलाकर खाक करनेवाला स्वार्थी, स्वकेन्द्रिय, वैयक्तिक, विवेक-विनयशून्य, उच्छृखल एव उद्दड--नये पूजीवादी समाजको श्राप रूप भारतीय जनजीवनके मस्तिष्कके कलकको सादर-सोल्लास स्वीकृत किया गया, जिसके प्रमुख कारण रूप माना जा सकता है, वैज्ञानिक नये आविष्कारोके और नित्य नूतन अवधारणाओके जालको--जिसने व्यक्तिकी किसी भी प्रकारकी निश्चयात्मकता, दृढता और विश्वासको उलझा दिया । साथ ही साथ अस्तित्ववादी दर्शनने व्यक्तिकी व्यग्रता, दुख, निराशा और अकेलापन या असहाय स्थिति, मानसिक त्रास, आत्म निर्वासन आदिको अभिव्यक्ति दी ।

हॉलाकि सभी दोषदायी और नुकशानकर्ता वृत्ति-प्रवृत्तियोके सपूर्ण जिम्मेवार उन नूतन लहरोको नही ठहराया जा सकता, क्योकि नये युग और नये परिवेशमे नूतन प्रकारसे सामजस्यकी आवश्यकता निश्चित थी, जो नूतन तर्क-बुद्धि पर आधारित और विवेकशील एव भावनामूलक हो । इस दुष्कर कार्यके लिए और अग्रेज शासन एव ईसाई मिशनरियोके आक्रामक रूखका प्रतिवाद करनेके लिए धर्म सुधारकोको भी नये परिवेशसे गुजरना पडा । देशके विभिन्य भागोमे भिन्न भिन्न महापुरुषो द्वारा अलग अलग धर्म सिद्धान्तोके सहारे उन्नयन हुआ । राजा राममोहनरायने ब्रह्म समाज स्थापित करके कर्मकाड और अध विश्वासके विरोधमे उपनिषदके सहारे एकेश्वरवादका मडन और मूर्तिपूजाका खडन किया, साथ ही कुरूढियोके विरुद्ध नारा बुलद किया । जातीप्रथा और सतीप्रथाका विरोध एव विधवा विवाह और स्त्री-पुरुष समानाधिकारका अनुरोध. अग्रेजी शिक्षा प्रणालीकी हिमायत और ब्रिटीश राज्यकी प्रशसा करनेवाले सर्वप्रथम व्यक्ति वे ही थे । एकेश्वरवाद और वेदोकी अपौरुषेयताको लेकर दयानदजीने आर्यसमाज रचा और सामाजिक सुधार एव शिक्षाका प्रचार किया । भागवत और वैष्णवधर्मके हार्द--भजन कीर्तनके स्वरूपानुरूप श्री केशवचन्द्र सेनने प्रार्थना समाजकी रचना की, जिसके प्रमुख नायक पाश्चात्य विचारधारासे प्रभावित महादेव-गोविद रानाडे थे । अस्पृश्यताके विरोधी और मानवीय समानताके प्रचारक, आत्म सम्मान और राष्ट्रीय गौरवके हिमायती एव विदेशोमे भी श्री वीरचदजी गाधी सदृश श्रेष्ठतम भारतीय सस्कृतिके प्रचारक श्री विवेकानदजी 'श्री रामकृष्ण परमहस'के उपदेशोके प्रचारक बने । भारतीय धर्म सिद्धान्ताश्रयी श्रीमति एनी वेसेटकी थियोसोफिकल सोसायटीका भी प्रचार हुआ । इस प्रकार एक ऐसा आभास मूर्त रूप ले रहा था कि नवयुग और नवचेतनाका प्रकाश पश्चिमसे पूर्वकी ओर आ रहा है, लेकिन, याद रहे, प्रकाशपूज आदित्यका उदय पूर्वांचलमे ही होता है जिससे विश्व आलोकित होता है । अत उन धार्मिक महात्माओके प्रयत्नसे भारत, यूरोप बननेसे बच गया ।

समस्त भारतके इस दयनीय दशाका प्रभाव जैन समाज पर पडना भी अत्यन्त ही स्वाभाविक था । मुगल शासनकालसे ही जैन समाज और सघमें, विशेष रूपसे रीढकी हड्डी तुल्य साधु सघमे आचार शैथिल्य-श्रमणोके प्राणाधार कठोर सयम और कठिन आचारोका परित्याग एव साधु जीवनमे ज्योतिष, वैद्यक, मत्र-तत्रादि आश्रयी गृहस्थोचित धधे, जागीर-रसालादिका स्वामीत्वादि सासारिक कार्यकलाप, प्रमादवश ज्ञान-ध्यान और आराधना-साधनाके प्रति उपेक्षा भाव, मिथ्याभिमान और अक्खडपनके कारण साधु समाजमे परस्पर पदप्राप्ति-नेतृत्वादिके धार्मिक झगडे, कुसप और बिखराव आनेके परिणाम स्वरूप प्राचीन वैभविक विरासतकी विस्मृति होना निश्चित है । साधु समाजके इस डावाडौल हालातका असर श्रावक समाज पर भी विपरित हुआ गृहस्थ जीवनमे भी अज्ञान जन्य निराशा हताशा, दिशा शून्यता और दिग्मूढता सगठन शैथिल्य धार्मिक आचार-विचार सिद्धान्त सभ्यता और सस्कृति विषयक अनेक भ्रान्तियाँ प्रचलित हुई । अज्ञानताकी बाँहे यहाँ तक फैली थी कि जैनधर्मका उद्भव-प्रचलन अथवा देव-गुरु-धर्म रूप तत्त्वत्रयी और दर्शन-ज्ञान-चारित्र रूप रत्नत्रयी विषयक धारणाये-आदि मूलभूत और सर्वसामान्य बातोसे भी शिक्षितवर्ग अनभिज्ञ था ।

इस प्रकार निष्कर्ष यही प्राप्त होता है कि शिक्षा, सगठन और सामर्थ्यके शैथिल्य एव सामाजिक कुरूढि रिवाजोके चहुकन अधकारसे घिरे जैन समाजकी रक्षाका प्रबन्ध दुश्वार होता जा रहा था । जिन शासनके हार्द—आन-प्राण—प्रतिमा पूजन, कठोर सयमयुक्त साधु जीवन और आध्यात्मिक ज्ञान-विज्ञानकी जडे ही करारी चोटे खा-खाकर बेहोश प्राय होने लगी थी ; ऐसे माहोलमे स्वकर्तव्यसे परिचित करवाके सुषुप्त समाजकी जागृति और तत्कालीन पर्यावरणकी परिशुद्धिके लिए किसी तेजस्वी तारककी आवश्यकताको सविज्ञ शाखीय जैनाचार्य श्रीमद् आत्मानदजी म सा ने पूर्ण किया ।

विभिन्न परिस्थिति अवलम्बित विविध रचना शैलीका परिचय :—

दार्शनिकता और धार्मिकता-उभयमें पर्याप्त भिन्नता होने परभी दोनोमे अत्यत नैकट्य प्राप्त होता है । यथा—दार्शनिकता, यह विचारशैली है और धार्मिकता उसी पर आधारित आचरणा ; अत जब विचारानुसार आचरण और यथा आचरण तथा विचार रूप एकत्वका प्रकटीकरण होता है, तब आत्मिक कल्याणकारी, मोक्ष-मार्गकी निःश्रेणीका उद्घाटन होता है और जीवन व्यवहारोमें भी शम-दम-सुधारसका सिचन होता है । दर्शन और धर्मके प्रचार और प्रसारका माध्यम है साहित्य, जिसका अचित्य एव असरकारक प्रभाव बना ही रहता है ! और जीवत साहित्यके सहारे सामाजिक चैतन्यके चक्र गतिमान हो सकते है ।

प्रत्येक धर्मकी अपनी दार्शनिक आधारशिला, अपने धर्मशास्त्र (साहित्य) एव धार्मिक परिपाटी या परपराये (आचरणा) होती हैं । प्राचीनकालसे जैनधर्मकी प्रत्येक प्रवृत्ति अनेकान्तवाद और स्याद्वादके बहुमूल्य दार्शनिक सिद्धान्ताश्रयी देखी जा सकती है । परतु दुर्भाग्यवश साम्प्रतकालीन जैनधर्मके आचार-विचार व्यवहारमे तत्कालीन राजकीय, सामाजिक और धार्मिक पर्यावरणके कारण अज्ञानता, शका-कुशका और भयके जाल एव अनेक प्रकारकी जडता-गतानुगतिकता और परापूर्वके रूढि-रिवाज-परपराओकी दुहाई वाली कूपमडूकताके दर्शन होते है । इस पर हार्दिक खेद प्रकट करते हुए प श्री दरबारीलाल 'सत्यभक्त' अपने *'जैनधर्म और अनेकान्तवाद'* लेखमे जो चित्र अकित करते है वाकइ सोचनीय है । **"हमको अपने आचार-विचार-व्यवहारादि पर अनेकान्त दृष्टिसे विचार करना चाहिए कि, उसमें क्या क्या आजके लिए 'अस्ति' रूप है और क्या क्या 'नास्ति' रूप है । .. परंतु दुर्भाग्यवश जैन समाज यह नहीं चाहता कि उसका कोई लाल अनेकान्तका व्यावहारिक उपयोग करें, उसको कुछ ऐसा रूप दें जिससे जड समाजमें कुछ चैतन्यकी उद्भूति हों-दुनियाका कुछ आकर्षण हों-उसे कुछ मिले भी । जैन समाजको आज तो सिर्फ 'अनेकान्त या स्याद्वाद' के नामकी पूजा करनी है, उनके फलितार्थकी नहीं ।"**[4]

बहुमुखी प्रतिभावान् श्री आत्मानदजी म सा ने इन सारी परिस्थितियोका परिशीलन किया था ।

उनकी पर्यवेक्षक तेज नजरसे एक भी बात अछूती न थी । अतः उन्होने शुष्क क्रियाकी जड़ता और **शुष्क ज्ञानकी जड़ताको फूक देनेवाली और आत्मिक प्रसन्नताको अंतरमे भर देनेवाली शुद्ध ज्ञानमय क्रियाशीलताको** प्राधान्य दिया. साथ ही उस क्रान्तिकारी **सुधारकने** विशाल अध्ययन-अकाट्य युक्ति और शास्त्रीय प्रमाणोकी नीव पर आधारित आस्थायुक्त बनकर समाजमे व्याप्त ...याको निर्भीकतासे स्पष्टतया प्रकट करके उसके लिए प्रशस्त मार्गदर्शन देते हुए जैन समाजको अधःपतनसे बचानेके लिए भरसक कोशिश की । जैन धर्मियोकी न्यूनता प्रदर्शित करते हुए *चिकागो प्रश्नोत्तर* ग्रन्थमे आपने फरमाया -**"जैन धर्ममें तो दोष किंचित् मात्र भी नही है, किन्तु शारीरिक और मानसिक, ऐसा सामर्थ्य इस कालमें इस भारतवर्षके जैनियोंमें नही है कि, मोक्षमार्गका जैसा कथन किया गया है, वैसा पूर्णतः पाल सके । दूसरा, यह दोष है कि, जैनियोंमे विद्याका उद्यम जैसा चाहिए वैसा नही है । तीसरे, एकता नहीं है, साधुओंमें भी प्रायः परस्पर ईर्ष्या बहुत है । ये दोष साम्प्रतकालीन जैनधर्मीके हैं, जैनधर्ममें तो कोई भी दोष नहीं है ।"**

इस प्रकार अपने विशिष्ट अंदाजसे सामाजिक और धार्मिक कुरूढियें निर्भीक उद्घाटन करके यथार्थ मार्गदर्शन देकर उसके युगानुरूप नूतन परिष्कृत आयामोको पेश किया है । उन्होने शिथिलाचारी मूर्तिपूजक हो या जिनाज्ञाभंजक मूर्ति अपूजक, रूढिवादी-मूढ या अज्ञानी हो अथवा नूतन (अंग्रेजी) शिक्षा प्राप्त--सभीको अपनी विशिष्ट एवं स्वतंत्र शैलीसे प्रभावित किया है--जिसके कुछ उदाहरण उनके व्यक्तित्वालेखनमे दर्शाये गये है । जैन अनेकान्तवादके व्यावहारिक और यथोचित प्रयोग उनके समाज सुधार और साहित्य सृजनके कार्योमे प्रत्यक्ष होते है ।

(१) आपने ज्ञानभंडारोमे कैद अमूल्य ज्ञानवारिधिका अमृतपान, उनके अधिकारियोसे परामर्श करके ज्ञानपिपासुओको करवाया-स्वयंने भी किया । (२) जैन परंपरानुसार निश्चित आगमाध्ययन हेतु योगोद्वहनको स्वीकृत करते हुए भी, अज्ञानांधकारके गोलेमे प्रवेश सदृश योगोद्वाहक साधु द्वारा शिथिलाचार स्वरूप उन आगमाध्ययनकी उपेक्षाको निभानेकी वृत्तिको उद्घाटित करके साम्प्रत द्रव्य-क्षेत्र-कालादिको ध्यानमे रखकर ज्ञानालोकसे आलोकित बननेमे उद्यमवंत जिज्ञासुओको बिना योगोद्वहन ही आगमाध्ययनकी सुविधा प्रदान करनेकी हिमायत की । अपने इस तत्कालीन, यथोचित स्वतन्त्र मंतव्यानुसार आपने डॉ. हॉर्नलेको 'उपासक दशांग'के अनुवाद और विवेचनके लिए पर्याप्त सहयोग भी दिया । (३) इसके अतिरिक्त धार्मिक और सामाजिक सुधारके लिए स्व-रचित ग्रन्थ द्वारा मार्गदर्शन दिया । जैसे बाल-विवाह-पर्दाप्रथादिके लिए उनका मंतव्य है--**"ये प्रथाएं मुस्लिम शासनकालसे ही प्रारम्भ हुई थीं, इसके पूर्व उसे कोई जानता भी न था, अब वह समय व्यतीत हो चूका है, अतः अब उसे विदा कर देना ही उचित है । बालविवाह सर्वनाशका कारण है । इससे तन-मनका विकास रुक जाता है और व्याधियाँ कब्जा जमाती हैं । वीर्यकी परिपक्वता और पढ़ाईकी समाप्ति पूर्व विवाह न करे ।"** (४) जैनधर्मके उद्भव और विकासादिके संबंधमे विभिन्न मतो एवं व्यक्तियोके विपरित विधानो या तार्किक दलीलोके नीरसनके लिए अनेक पूर्वाचार्योके शास्त्रीय संदर्भोको उद्धृत करके सत्य प्ररूपणाको प्रकट करनेमे जरा-सी भी हिचकिचाहटका अनुभव नही किया ।(५) अन्य दर्शनकारो एवं इतर धर्मियोके जैनधर्म पर किये गये झूठे प्रचार और गलत फहमियोका भी पूर्णरूपेण प्रतिवाद किया ।

इस प्रकार उनके सामने जैसी जैसी विभिन्न परिस्थितियाँ आयी उनके अनुसार उन्होने भिन्नभिन्न शैलियो मे गद्य-पद्य साहित्य सृजन किया । जैसे--समाजको जागृत करके उनकी धार्मिक अज्ञानताको दूर करने हेतु **कथनात्मक शैलीमें** सृजन किया, तो सैद्धान्तिक ...ओके लिए **मंडनात्मक शैलीका** एवं जैनधर्म पर किये गये निराधार आक्षेपोके प्रत्युत्तर हेतु प्रतिवाद रूपमें **खंडनात्मक शैलीका** प्रयोग किया गया है । जैन या अजैन--जन साधारणकी अनभिज्ञाताके विदारक **प्रश्नोत्तर (संवादात्मक) शैलीमें 'चिकागो प्रश्नोत्तर' (सर्वधर्म परिषद-चिकागो), के लिए तैयार किया गया निबन्ध** और **'जैनधर्म विषयक प्रश्नोत्तर'** आदि ग्रंथो की रचना की । संस्कृतादि प्राचीन भाषाके **अनभ्यस्तो** लेकिन धर्म-सिद्धान्त और तत्त्व जिज्ञासुओंके लिए सरल

हिन्दीमे **पृथक्करण शैलीमें 'बृहत् नवतत्त्व संग्रह'** ग्रन्थरत्नकी अनमोल भेट दी हैं । **तत्त्वत्रयीके अपरिचितोकी जानकारीके लिए वर्णनात्मक शैलीमें 'जैन तत्त्वादर्श' अर्थात् 'जैन गीता तुल्य' पवित्र और** जीवनोपयोगी महान **ग्रन्थ प्रस्तुत** किया. तो ग्रन्थराज **'तत्त्व निर्णय प्रासाद'** मे यथार्थ वीतराग देवकी कसौटी और सिद्धिको पूर्वाचार्योंके ग्रन्थाधारित दर्शाकर सृष्टि क्रम-गायत्री मत्रार्थ, श्वेताम्बर-दिगम्बर जैन और **बौद्धधर्म** विषयक **प्ररूपणा, भ महावीरकी** पट्ट परपरा **और गृहस्थके सोलह** सस्कारादि विविध विषयोका विशिष्ट **विश्लेषणात्मक शैलीमें** आलेखन किया गया है । श्री दयानद सरस्वतीजी राजा शिवप्रसाद 'सितारे हिंद'-आदि तत्कालीन इतर दर्शनीय और मान्य हुए विद्वान साहित्यकारोकी भ्रामक ... प्ररूपणा ... श्री रत्नविजयजी और श्री धनविजयजीको ... अरिहतभ द्वारा की गइ प्ररूपणाके ... स्वरूप ... उत्सूत्र प्ररूपणाओके प्रत्युत्तरके लिए एक महान सशोधककी अदासे अनेक आगम ग्रन्थो एव पूर्वाचार्योके शास्त्रोकी अनेक शहादतोको प्रस्तुत करनेवाले **'अज्ञान तिमिर भास्कर' और 'चतुर्थ स्तुति निर्णय भाग-१-२'** की ग्रन्थ रचना. किसी ईसाईके **"जैन मत परीक्षा"** ग्रन्थमे किये गये आक्षेपोके प्रत्युत्तरमे **'ईसाई मत समीक्षा'**-आदि ग्रन्थोमे अपने विशाल अध्ययन और अकाटय तर्कशक्तिका परिचय करवानेवाली **तार्किक और समीक्षात्मक** शैलीका प्रयोग दृग्गोचर होता है ।

इनके अतिरिक्त **इतिवृत्तात्मक शैलीमें ऐतिहासिक कृति-"जैन मतवृक्ष"** चित्राकृति रचना—पटालेखन और बादमे पुस्तकाकारमे प्रस्तुतिकरण करके ऐतिहासिक साहित्यमे नूतन अभिगम पेश किया तो **"सम्मति तर्क"** आदि जैसे श्रमसाध्य-दुर्बोध ग्रन्थके अध्ययन-चिंतन-मनन पश्चात् उसमे जो-जो सशोधन किये है, उन साक्षिपाठोको वर्तमानमे अनेक विद्वानोने अपने विवेचनमे उद्धृत किये है । इन सब गद्य विधासे परे पद्य रचनाओमे अनेक कथानकोके जिक्रके साथ विभिन्न प्रकारसे परमात्माकी भक्ति, अनेकविध परमात्म-पूजाओकी **विधानात्मक शैलीमे** प्ररूपणा, श्री अरिहंत देवोके जन्मादि कल्याणक महोत्सवोका **वर्णनात्मक शैलीमें** आलेखन, 'वीसस्थानक' या 'नवपदादि'की उत्तम आराधनाकी विधियोके निर्देशन आदिसे आत्म समर्पण भाव भाविकोको जीवन कर्तव्योका और आत्म-कल्याणकारी उपदेश प्रदान हेतु उपदेशात्मक, **वर्णनात्मक, विधानात्मक, शैलियोंका** प्रयोग किया गया है ।

इस प्रकार उनके साहित्यमे विविधतापूर्ण अनेक शैलियोका समन्वय (कही कही एक ही ग्रन्थमे दो-तीन शैलियोका सगुफन) प्राप्त होता है । अत्र विस्तार भयसे सर्व शैलियोंके नामोल्लेखनसे ही सतुष्टि करके दो-एक शैलीके उदाहरण ही प्रस्तुत करना यथोचित होगा । अकाट्य तार्किकताके उदाहरण स्वरूप **"जैन तत्त्वादर्श"-परि द्वितीय की वाद-चर्चा उल्लेखनीय है—"हम एक ही ब्रह्म मानते हैं, और सर्व माया जन्य** है । **ब्रह्म तो सच्चिदानंद** एक ही शुद्ध **स्वरूप है।"-वादिकी** इस स्थापनाका **प्रतिवाद करनेवाले उनके शब्द है- "हे अद्वैतवादी ! यह जो तुमने पक्ष माना है सो बहुत ही** असमीचीन है, **यथा-माया** जो है **सो ब्रह्मसे भेद रूप** है वा **अभेद** रूप ? जेकर भेद रूप है तो जड है या चेतन ? **जेकर** जड है तो फिर **नित्य** है वा अनित्य ? **जेकर कहोगे** अनित्य है तो **अद्वैतमतके मूलकूं** ही दाह **करती है, क्युंकि जब ब्रह्मसे भेद रूप हुई- जड रूप हुई-नित्य हुई, फेरतो तुमने द्वैतपंथ आपही** अपने कहनेमें सिद्ध कर लिया, और **अद्वैत पंथ जड़-मूलसे कट गया** । जेकर कहोगे **कि अनित्य है,** तो भी द्वैतता कभी दूर नहीं होगी । **क्युंकि,** जो नाश **होनेवाला है, सो कार्य** रूप है, अरु जो **कार्य रूप है, सो** कारण जन्य है . . अतः **अद्वैत तीनोंकालमें भी कदापि सिद्ध नही होगा** ।" इसी प्रकारकी अनेक तर्क पुरस्सर दलीलो एव पूर्वपक्ष-उत्तरपक्षके विवादसे "जैन तत्त्वादर्श" ग्रन्थके परिच्छेद द्वितीय, चतुर्थादि भरे पडे है । अततोगत्वा सुदेव–वीतराग, सर्वज्ञ, अरिहत–सुगुरु एव सुधर्मके स्वरूपको निर्णित किया है । अत, पद्यमे श्री अरिहत भगवतके जन्म बाद छप्पन दिक् कुमारिकाओ द्वारा भगवतका जन्मोत्सव मनाया जाता है, पश्चात् चौसठ इन्द्रो **द्वारा सुमेरु** गिरि पर जन्मोत्सव किया जाता है, उसकी प्ररूपणा **वर्णात्मक शैलीमें 'स्नात्र पूजा' ग्रन्थमें** इस प्रकार की गई है-

राग भैरवीमें - "सुरपति सगरे जिनपति केरा, करे महाच्छव रंगे रे .....
थापी प्रतिबिम्ब जिनवर लेइ, पंच रूप करी संगे रे;
पांडुक वनमें शिला सिंहासने, जिनवर लेइ उछंगे रे .....
शक्र बिराजे त्रेसठ सुरपति, सुरगिरि मिले मन रंगे रे;
सामग्री सकल मिलावो सुरवर, खीरनिधि लावो गंगे रे..
मागध आदि तीर्थ उदकवर, औषधि मृत्तिका सुरंगे रे;
इंद्र इशान लेइ खोले प्रभुने, मोहमपति मनरंगे रे
वृषभ रूप करी, शृंगे जल भरी, न्हवण करे प्रभु अंगे रे "
राग खमाजमें - "कलश इंद्र भर ढारे जिणंद पर, कलश इंद्र भर ढार .
सुर वनिता मिल मंगल गावे, आनंद हास्य अपार रे,
गंधर्व किन्नर गण सब करते, गीत-नृत्य-स्वर ... रे;
देवदुंदुभि मनहर वाजे, बोले जय-जयकार रे ... जिणंद"[11] .....

पूर्वाचार्योंके प्रति दृढ़ आस्था और एकनिष्ठ भक्तिः--- भारत एवं भारतीयोके लिए संक्रान्तिकालका प्रारम्भ, अशान्ति-अव्यवस्था और अविश्वासके वातावरणमे, धार्मिक जनून ही मानो जनताका जीवनमंत्र-सा बन चूका था। लेकिन, परम और चरम प्रकारकी अहिंसाको हार्दमें छिपानेवाले जैनधर्म द्वारा उस जनूनमे भी सात्त्विकताका अमृत घोलकर भारतीय संस्कृति और संस्कारकी चेतनाको उजागर करनेकी कोशिश की गई है । यद्यपि जिनशासन यतिवर्ग, स्थानकवासी, तेरापंथी, बीसपंथी, अजीवपंथी, श्वेताम्बर-दिगम्बर, मूर्तिपूजक आदि अनेक भागोमे विभाजित हो चूका था, क्योंकि, आगम ग्रन्थ एवं पूर्वाचार्यकृत शास्त्रोके स्वच्छंदतापूर्वक किये जानेवाले विपरित अर्थोसे कुसंप, शिथिलाचार, अहंकारादि भंवरोके मध्य शुद्ध आचारकी किश्ती भी डॉवाडोल हो गई थी ।

इन सभी परिस्थितियोको माध्यस्थ दृष्टिबिंदुसे पर्यवेक्षण करनेवाले श्री आत्मानंदजी म.सा.की आत्मा पर करारी चोट पहुँची और उन परिस्थितियोसे जिनशासनके उद्धार हेतु उन्होने जीवन समर्पित कर दिया। सत्यवीर उस महापुरुषका जीवनमंत्र था–*सत्यका स्वीकार और असत्यका तिरस्कार या अस्वीकार*। स्थानकवासी संप्रदायके पोलके पर्देको आगमाध्ययनके अंकोरने हटा दिया, सत्य प्रत्यक्ष हुआ, जिसका स्वीकार उन्होने अपने साथियोके साथ किया, और उस सत्यके प्रचार-प्रसारके बल पर जिनशासनके उद्धारके सफल आयोजन किये । उन्होने प्रतिज्ञा की, कि **"मैं अपनी शक्ति अनुसार भव्य जीवोंके आगे सत्य सत्य बात प्रकट करूंगा, सत्यकी खातिर मैं किसीकी भी परवाह न करूंगा,"** और कदम आगे बढाया। नये नये मतोके उद्भव और खंडन-मंडनके उस युगमे उन्होने जो कार्य किये, उनकी नींवमे पूर्वाचार्योके यथेष्ट मार्गदर्शन, उनकी विचारधारा एवं प्ररूपणाका आधार दृश्यमान होता है ।

सत्यकी प्रतिमूर्ति, सर्वथा निरहंकारी, सामर्थ्यवान दिग्गज विद्वान, तत्कालीन जैनसंघ और जैन समाजके नायक, विनयादि अनेक गुणोपेत सुरीश्वरजीको सदैव यह खयाल रहता था कि उनका प्रत्येक विचार, वाणी, वर्तन निरंतर जिनाज्ञानुसार ही हो । कहीं भी, जाने-अनजानेमे भी, उन्हे कोई त्रुटि या गलतिका एहसास होने पर वे तत्काल उस दोषका इकरार और क्षमा याचना करनेको तत्पर रहते थे जिसका प्रत्यक्ष प्रमाण उनकी रचनाओमे उल्लिखित वचन ही है । जैसे, *"जैनधर्म विषयक प्रश्नोत्तर"*मे उस ग्रन्थको पूर्ण करते हुए लिखा है कि **"इन सर्व प्रश्नोत्तरोंमें जो वचन जिनागमोंसे विरुद्ध-भूलसे लिखा गया हो, उसके लिए क्षमा प्रार्थी हूं ।"** इसी तरह *"तत्त्व निर्णय प्रासाद"* ग्रन्थमे महत्तरा याकिनी सूनु श्री हरिभद्र सुरीश्वरजी म.सा.और कलिकाल सर्वज्ञ श्री हेमचंद्राचार्यजी म.सा.की उत्तम रचनाओका अविकल-विवरणयुक्त भावार्थ लिखकर श्रद्धापूर्ण अगाध विद्वत्ताका, विश्वको परिचय दिया है । फिर भी लिखते हैं **"महादेव स्तोत्र, अयोग व्यवच्छेद और लोक तत्त्व निर्णय-नामक ग्रंथोंकी टीका तो हमें मिली नहीं, केवल**

मूलमात्र पुस्तकें मिली हैं, वे भी प्रायः अशुद्ध है । परंतु **कितनेक मुनियोंकी प्रार्थनासे यह बालावबोध किंचिन्मात्र भाषा लिखी है । इनमें ग्रंथकारके अभिप्रायसे कुछ अन्यथा, या जिनाज्ञा विरुद्ध लिखा गया हों, तो हमें मिथ्या दुष्कृत हों, और अगर हमारी इस बालक्रीडामें भूल हो गई हों तो सुज्ञ जनों द्वारा उसका सुधार कर लेना चाहिए ।"-पृष्ठ १७७.** इसी ग्रन्थमे आपने *'आचार दिनकर' ग्रन्थाधारित 'सोलह सस्कार विधि वर्णन'*-की प्ररूपणा की है । उसकी समाप्ति पर भी पृ ५०३मे ऐसा ही इकरार और क्षमायाचना प्रकट की है ।

श्री आत्मानदजी म सा की पूर्वाचार्योंके प्रति कैसी सम्मानयक्त दृष्टि थी उसका प्रमाण *'अज्ञान तिमिर भास्कर'ग्रन्थमे भावसाधुके अधिकारमे* हमे मिलता है उनकी प्ररूपणानुसार भावसाधु किसे कहना चाहिए, उसकी परीभाषा रूप विधान करते है–**"आगमानुसारी अर्थात् आगमके जानकार की आज्ञासे या उनकी निश्रामें और गीतार्थकी पारतंत्रतामें अर्थात् गीतार्थ वृद्धोंकी आचरणानुसार आचरण करनेवालोंको भावसाधु कहना उचित है ।** पृ.२८७, २८८ इन गीतार्थोकी योग्यता विषयक विचारणाको प्रस्तुत करते हुए लिखते है – **"जिन अनुष्ठानोंका सूत्रोमें कथन नहीं किया गया है, फिरभी करने योग्य हैं–चैत्यवंदना, आवश्यकादिवत् और जिन कार्योके लिए सूत्रमें निषेध न किया हों, फिर भी चिरकालमे रूढि रूप चला आता है–उन सभीके लिए गीतार्थोंके चित्तमें यथोचित चिंतन-प्रकाश विद्यमान होता ही है। संविज्ञ गीतार्थ, मोक्षाभिलाषी, तत्कालीन बहुत आगमोंके जानकार और विधिमार्गके रसिक, विधिको बहुमान देनेवाले, संविज्ञ होनेसे पूर्वसूरी-चिरंतन मुनियोंके नायकोंके निषेध किये आचरण अथवा जिन्हें सर्व धर्मी लोक मानते है उन्हें - जाज्वल्यमान अग्नि प्रवेशसे भी अधिक साहस सदृश-बिना विशिष्ट श्रुत या अवधि ज्ञानके सहारे उत्सूत्र प्ररूपणा अर्थात् सूत्र निरपेक्ष देशना स्वरूपमे प्ररूपणा करनेके लिए कोई भी समर्थ नहीं है ।"** पृ २९४, २९५.

यही कारण है कि अमृतसरमे दिये गये आपके व्याख्यानमे आपने फरमाया था कि, **"जो लोग पूर्वाचार्योंके किये हुए यथार्थ अर्थको त्याग कर सूत्रोंके मनमाने अर्थ कर रहें है, एवं उन्हीं मनःकल्पित अर्थोंको सत्य समझानेका आग्रह कर रहे हैं, उन भद्र पुरुषोंका परभवमें क्या हाल होगा यह तो ज्ञानी महाराज ही बतला सकते हैं, परंतु इतना तो सुनिश्चित है कि उनके लिए जघन्य गतिके सिवा और कोई स्थान नहीं।"**[३]

अहमदाबादमे श्री शातिसागरजीम से वादमें, केवल दो-चार प्रश्नोत्तरमे ही विजयश्री वरनेके मूलमे यही-गुरु परपरासे ज्ञान प्राप्तिका माहात्म्य दर्शाते हुए उन्होने श्री शातिसागरजी म को अनुलक्षित करते हुए स्पष्ट किया -**"यदि आप गुरुजनोंके पास रहकर इन सबका विनयपूर्वक अध्ययन करते तो आजकी यह स्थिति कभी पैदा न होती और नाहि श्रद्धाभावमें इस तरह खोट आती। स्थानांगादि सूत्रादिका तत्त्वज्ञान महज़ अक्षरार्थोसे समझमें नहीं आता, बल्कि, गुरु महाराज जब उत्सर्ग-अपवाद समझाते हैं, सप्तभंगी, नय-निक्षेपादिसे विधिसूत्र, विवरण सूत्रादि शैलियोंका गहन अध्ययन-मनन करवाते हे, तब जाकर कोई गीतार्थ होता है, केवल वैतनिक शास्त्री या पंडितोंसे अध्ययन करनेसे कोई गीतार्थ नही बनता ।"** कितनी विशद एव गहन-गभीर-गुर्वादिके प्रति श्रद्धा और सम्मान उनके हृदयमे था, यह इस प्रसगसे अभिव्यक्त होता है । इसके अतिरिक्त तपस्वी महात्मन् पवर्तक श्री कान्तिविजयजीम की हस्तलिखित डायरीमे उन्होने अपने गुरुदेव श्री आत्मानदजी म सा की पुण्य स्मृतियॉ आलेखित की है, जिससे आचार्यदेवकी गुरुभक्ति और विनयादि गुण प्रकाशित होते है । तदनुसार जैन साधुवेशकी महत्ता, ज्येष्ठ दीक्षापर्यायीके साथ व्यवहार-वर्तन, लघु या वडीनीतिके लिए और आहारपानीके ग्रहणादिमे गुर्वाज्ञा प्राप्तिका महत्व, आहार-पानीकी विधि, ध्येयादि और गुर्वादिके प्रति विनय-व्यवहार वर्तनकी रीति-नीतियोका सुदर मार्गदर्शन प्राप्त होता है ।

पूर्वाचार्योके प्रति इस अखड आस्था और भरपूर भक्तिका सिलसिला उनके जीवनके प्रत्येक पलके साथ क्षीर-नीरवत् हो गया था, अतएव जिन पूज्यजी अमरसिहजीकी लाली नजरसे, त्रिलोचनके तृतीयनेत्र सदृश-विरोध, **क्रोध,घृणादिके** कारण तिरस्कार **युक्त** चिनगारियॉ श्री **आत्मानदजी** म सा पर **बरसती थी**, उन्हीके लिए **अत्यत स्नेहासिक्त** श्रद्धासे, **पूज्यजीके** दिलको जरा-सी भी ठेस न **पहुँचानेके** लिए श्री **आत्मानदजी** म सा ने अपने **साथियोको** चेतावनी दी थी- **"खबरदार, पूज्यजी जब तक जीवित हैं, तब तक हमें ऐसा**

कोई कार्य नहीं करना है, जिससे उनका मन, मारे दुःखके कराह उठें। जरा सोचो, हमारे यों ही संप्रदाय त्यागसे उनके दिल पर क्या गुजरेगी ?.......... और फिर, फिरकेमें रहकर हमें कोई काम करना है तो क्या कम काम हैं ?"[13] लेकिन जब उनको उन्हीके द्वारा ऐसे कार्य करनेके लिए प्रेरित किया जाता हैं कि जो पूर्वाचार्योंके वचनोसे या प्ररूपणा-परपराओसे तो विपरित है, और जिससे पूज्यजी आदि उत्सूत्र प्ररूपकोके साथ मेलजोल बढे एव वैमनस्य उत्पन्न न हो, तब उनकी पूर्वाचार्योंके प्रति श्रद्धेय भक्ति फूट पडती है -"**पूज्यजी साहब ! आप जो कुछ फरमा रहे हैं वह ठीक है, परंतु क्या किया जाय ! आगमवेत्ता पूर्वाचार्योंके लेखोंके विपरित अब मुझसे प्ररूपणा होनी अशक्य है । मै तो वही कहुँगा जो शास्त्र विहित होगा। शास्त्र विरुद्ध मनःकल्पित आचार-विचारोंके लिए अब मेरे हृदयमे कोई स्थान नही है ।"**[14] '*तत्व निर्णय प्रासाद*' *के तैतीसवे स्तभ-पृ ५४०,५४१* मे आपने अन्य विदेशी विद्वानोको- पाश्चात्य पडितोको भी स्वकल्पनासे नही, लेकिन पूर्वाचार्योंके रचित टीकादिकी सहायतासे ही जैनमतके शास्त्रोके अनुवाद या विवरण करनेकी प्रेरणा दी है । *इसी प्रकार जैन-तत्वादर्श, अज्ञान-तिमिर-भास्कर, सम्यक्त्व शल्योद्धार, चतुर्थ स्तुति निर्णय भा १ २, चिकागो प्रश्नोत्तर आदि* उनके प्राय सभी ग्रन्थोमे ऐसी ही पूर्वाचार्योंके प्रति आस्था और भक्ति प्रदर्शित हुई है ।

ग्रन्थोंमें पूर्वाचार्योंके प्रभावः— व्यक्तिकी बुद्धि प्रतिभाकी आभा और चारित्रिक तेजप्रभा उसके नयनोसे ही छलकती है, वैसे ही श्री आत्मानदजी म के पुरुषार्थी अध्ययनकी प्रतिभाका आलोक उनकी साहित्यिक कृतियोसे छलकता है, जो उनकी अमर, मौनवाणी रूप वाङ्मयमे होनेवाली उनके हृदयस्थ भावोकी मुखरित अभिव्यक्तियॉ है । श्री सुशीलजीके शब्दोमे -"**श्री आत्मारामजी म.के यथार्थ दर्शनकी तीव्र लालसाकी तृप्ति उनके विराट ग्रन्थ सर्जन - अक्षर देहमें ही हो सकती है..... उनके जाज्वल्यमान ज्ञान-वैभवका पयपान किये बिना उनका जो चित्र अंकित किया जाय वह सर्वथा अपूर्ण होगा...... उनके द्वारा निर्मित वाङ्मयके वास्तविक विवेचन हेतु एक स्वतंत्र ग्रंथ भी रचा जाये, तो भी, कदाचित् उनके प्रति पूर्णन्याय न हो सकेगा ।"**[15] "**यह तो सिद्ध ही है की, किसी भी साहित्य रचनामें उस साहित्यकारकी अंतरात्माका यथार्थ चित्र पाठकके सम्मुख उपस्थित होता है ।"**[16]

श्री आत्मानदजी म सा के, असाधारण साहित्यका महत्तम वैशिष्ट्य यह है कि, उनकी प्रत्येक रचना 'नामूल लिख्यते किचित्'के सिद्धान्तको दृष्टि समक्ष रखकर की गई है । उनका अतिशय, विशद, वैविध्यपूर्ण, विषयगत समीक्षात्मक शैलीसे किया गया अध्ययन और उससे प्रतिफलित विशिष्ट वाङ्मयमे हमे स्थान स्थान पर अनेक अगोपाग—गणधर रचित आगम—और पूर्वाचार्योंके पचागी रूप शास्त्रीय ग्रन्थो, वेद-पुराण-श्रुति-स्मृति-उपनिषद,न्यायशास्त्र-तर्कशास्त्र, बाइबल-कुरान, तौरेतादि अनेकानेक विविध वाङ्मयके यथोचित उद्धरण यथावसर प्राप्त होते हैं । उनकी कृतियॉ कोरी कल्पनाके पखो पर स्वप्नील सवारी नही होती है, लेकिन, उसकी आधारशिला किसी न किसी धार्मिक, दार्शनिक, ऐतिहासिक पृष्ठभूमि होती है ।

यही कारण है कि उनकी साहित्यिक रचनाओमे अनेक पूर्वाचार्योंके सस्कारोका असर प्राप्त होता है । (१) आचार्य प्रवरश्रीके समयमे राजकीय और सामाजिक अव्यवस्थाके सबब प्राचीन भाषाओका स्थान नयी भाषाओने लेना प्रारम्भ कर दिया था, अत सामान्य जनोका व्यवहार सस्कृत-प्राकृत भाषाओसे छूट गया था, जिससे स्वधर्मका सच्चा स्वरूप और यथार्थ बोध पर अनभिज्ञताका अधकार छा गया था । आपने इसका पर्यवेक्षण किया और एक नयी उदीयमान भाषा-हिन्दीकी ओर साहित्य प्रवाहको मोडा जैसे श्री सिद्धसेन दिवाकरजीने तत्कालीन परिस्थितियोको परखकर सस्कृतमे शास्त्र सृजनकी परपराकी नीव रखी, वैसे ही श्री आत्मानदजी म ने भी तत्कालीन जनभाषा हिन्दीमे रचना करनेका प्रारम्भ करके, सस्कृत प्राकृतादि विद्वद्भोग्य भाषाओसे अज्ञात, अथवा अल्पज्ञात जिज्ञासुओ पर महदुपकार किया,जो वाङ्मयके लिए उसको उपयोगी रूपमे विस्तरित करनेके लिए अत्यावश्यक सिद्ध हुआ । (२) बालजीवोके उपकारार्थ जैसे ज्ञानाभोनिधि आचार्य श्री ज्ञानविमल सुरीश्वरजी म सा ने लोकभाषा गुजरातीमे *नवतत्व, दिवालीकल्प, अध्यात्म*

कल्पद्रुम, ध्यानमाला आदिका बालावबोध किया. ऐसे ही न्यायाम्भोनिधि श्री आत्मानंदजी म.सा.ने भी अपने ग्रन्थराज *'तत्व निर्णय प्रासाद'मे महादेव स्तोत्र, अयोग व्यवच्छेद, लोकतत्व निर्णयादि ग्रन्थोका बालावबोध तथा 'ध्यानशतक' ग्रन्थका पद्यबद्ध विवेचन या 'आचार दिनकर' ग्रन्थाधारित* गृहस्थ जीवनके सोलह संस्कारोका वर्णन दिया है । (३) १४४० ग्रन्थोके रचयिता, महान दार्शनिक श्री हरिभद्र सुरीश्वरजीम.सा.के गुणानुरा प्रदर्शित करनेवाले उदात्त निर्घोष–**"पक्षपातो न मे वीरो, न द्वेषः कपिलादिषु; युक्तिमद्वचनं यस्य कार्यः परिग्रहः"** का प्रतिसाद हमे उनकी रचनाओमे प्राप्त होता है । अपने *'ईसाई मत समीक्षा'ग्रन्थमे आपने फरमाया है,* **"कोई पुरुष या स्त्री किसीभी जातिवाला क्यों न हो. जो इच्छा निरोधपूर्वक शीलका पालन करता है वही श्रेष्ठ पुरुष गिना जाता है । ऐसे व्यक्ति बहुत मतोंमे और बहुत जातियोंमे अब भी मिल सकते है - क्या विरोध है ?"** (४) *द्वादशार नयचक्र'* नामक अद्वितीय न्यायग्रन्थ कर्ता श्री मल्लवादी सुरीश्वरजी म. (विक्रमकी पांचवी शती) *प्रमाणनयतत्व लोकालंकारनामक* प्रसिद्ध न्यायग्रन्थ रचयिता श्री वादिदेव सुरीश्वरजी म.(वि.सं.११४३ से १२२६), *न्याय विषयक शताधिक कृतिकर्ता* महामहोपाध्याय श्री यशोविजयजी म.सा. आदि प्राज्ञ पुरुषों सदृश न्यायशास्त्राधारित अकाट्य-युक्तियुक्त तार्किक शैली अर्थात् खंडनात्मक प्रतिपादनात्मक और समन्वयात्मक शैलीमे *"तत्व निर्णय प्रासाद", "अज्ञान तिमिर भास्कर", "जैन तत्वादर्श" 'सम्यक्त्व शल्योद्धार"* आदि साहित्य कृतियाँ निर्माण करके अनेक प्रकारसे जैनधर्म-दर्शन एवं साहित्यकी सर्वोत्कृष्टता सिद्ध की है । (५) *"हीरप्रश्न (प्रश्नोत्तर समुच्चय)"-सक.-उपा.श्री कीर्ति विजयजी गणी,"सेनप्रश्न",श्री सकलचंद्रजी म.कृत "गौतम पृच्छा"*आदि अनेक ग्रन्थोसे प्रेरणा ग्रहण करते हुए आपने भी ऐसी ही प्रश्नोत्तर शैलीमे,-सामाजिक, भौगोलिक, खगोलिक ऐतिहासिक एवं जीवन व्यवहारके समसामायिक प्रश्नोको दृष्टिपथ पर रखते हुए जैन सिद्धान्तो, रहस्यो, आगमिक प्ररूपणाओको समाहित करनेवाली*"जैनधर्म विषयक प्रश्नोत्तर", "चिकागो प्रश्नोत्तर"*आदि ग्रंथरचना करके सुंदर मार्गदर्शन प्रस्तुत किया है । (६) उ.श्री जिनविजयजी गणि, अध्यात्म योगी श्री आनंदघनजी म.सा., कविवर श्री चिदानंदजी म.सा.आदिकी परमात्म भक्तिमे झूमती-लहराती, सर्वस्व समर्पण भाव भरपूर, भगवद् भक्ति युक्त वर्तमान चौवीसीके जिनेश्वरोके गुणगान, कीर्तन, तीर्थंकरोके आत्मिक वैभवके साथ याचक दास्य या सेवक भाव रूप संपूर्ण समर्पित आस्थायुक्त धार्मिकता एवं दार्शनिकताको संगुंफित करनेवाली*"स्तवन चौवीसी"* रचनाकी छायातुल्य वैराग्य और शांतरसमे पगी, विविध राग-रागिणिमे प्रवाहित विभिन्न भावधारा युक्त *"जिन स्तवन चौवीसी"* की रचना की । (७) विक्रमकी उन्नीसवी शतीसे जैनकाव्य साहित्यमे *"पूजाकाव्य"*भी अपना अनूठा प्रभाव फैला रहा था, जिनको भाविक भक्तगण समुदायमे या वैयक्तिक रूपमे विविध राग और ढाल या चालोमे गाते गाते जिनभक्तिमे तदाकार हो जाते है । श्री वीरविजयजीम., श्री सकलचंद्रजीम. श्री पद्मविजयजीम., श्री रूपविजयजीम., श्री गंभीरविजयजीम. आदिने विविध विषयोको और तीर्थो-चरित्रो आदिको आलेखित करनेवाली पूजाकाव्य कृतियाँ गुजरातीमें की थी । हिन्दी भाषामे उसकी शून्यता निवारण हेतु उन्हीं रचनाओसे प्रेरणा ग्रहण करके पूजा-काव्योकी–*स्नात्रपूजा, अष्टप्रकारीपूजा, नवपद पूजा, वीसस्थानक पूजादिकी* रचना विविध छंद-ढाल-देशी और राग-रागिणियोमे की । (८) श्री चिदानंदजीम. आदि अनेक जैन जैनेतर कविरत्नोकी *"बावनी काव्य"* प्रकारकी रचनाओके समकक्ष आपने भी *"उपदेश बावनी"* काव्य रचना करके तत्वत्रयी देव, गुरु, धर्मतत्व-के स्वरूपालेखन एवं चेतन आत्माके लिए उपदेशात्मक प्रबोध वचनोकी प्ररूपणाकी है । (९) महान तपस्वी और महाकवीश्वर श्री उदयरत्नवि.म.सा.आदिकी *बारहमासा* प्रकारकी रचनाओसे प्रेरित होकर श्री आत्मानंदजी म.सा.ने *श्री नेमिनाथ जिनस्तवन रूप बारहमासा'* काव्यकी रचना की,तो उपाध्याय श्री विनय विजयजीम.सा.की *"सोलह भावना" वर्णित "शांतसुधारस" भावना प्रबन्ध* सदृश आचार्य देवने सरल हिन्दीमें सुंदर काव्य शैलीमे *"बारह भावना"ओका सज्झाय-काव्य रूपमे* आलेखन किया है ।

अखिल वाङ्मयके अवलोकनसे हमारे दृष्टिपथ पर उभरनेवाले दृश्यानुसार सकल जैन साहित्य सृजनके प्रायः परम्परित तथ्यालेखन द्वारा पनकार सिद्धान्तो एवं रहस्योको अपनी मौलिक प्रतिभाके बल पर विविध

अपने *"जैन तत्त्वादर्श"* *"जैनधर्म विषयक प्रश्नोत्तर"* एव *"चिकागो प्रश्नोत्तर"* आदि ग्रन्थोमे अनेक सैद्धान्तिक शका-समस्यादिका निराकरण एव प्राचीन वाङ्मयाधारित सामान्य विषयोंकी प्ररूपणा की हैं । *"सम्मति तर्क"* जैसे अत्यन्त कठिन-न्याय विषयक ग्रन्थोमे सशोधन करके अनुसधान क्षेत्रकी एक नयी क्षितिजको उद्घाटित किया है ।

दार्शनिक और धार्मिक—सामान्यत दर्शन और धर्म—दोनो एक दूसरेसे भिन्न होने पर भी परस्पर पूरक-सहयोगी दृष्टिगोचर होते है और साहित्य है इन दोनोको जोडनेवाली विधा । जिनशासनके पूर्वाचार्यों द्वारा प्राकृत, सस्कृत मागधी अपभ्रशादि विविध भाषाओमे अमूल्य, तात्त्विक साहित्य उन भाषाओसे अनजान तत्त्वगवेषकोके लिए लाभ श्री आत्मानदजी म सा ने सरल हिन्दी भाषामे ग्रथित करके पेश किया। वेदातके अध्येता, इतिहास-परम्परादिके पाठक, उपनिषद या श्रुतियोके पर्यवेक्षक, सत दर्शनोके ज्ञाता और चितन-मननकर्ता समर्थ दार्शनिक निहायत धार्मिक एव मूर्तिपूजाके समर्थक आचार्य प्रवरश्रीने अपनी रचनाओमे सप्रमाण-युक्तियुक्त-जैनदर्शनके श्वास-प्राण तुल्य स्याद्वाद-अनेकान्तवाद जैसे गहन विषयको भी अपनी विशिष्ट शैलीसे अत्यन्त सरल बना करके प्रस्तुत किया है, जो सभीको उपयोगी और लाभकर्ता बना है एव पाठकोको जैन दर्शनका प्राय सपूर्ण ज्ञाता बनाता है, यथा—वेदान्तमे जिस प्रकारसे मुक्तिकी मान्यता है, उन्हे श्रुतियॉ, उपनिषदादिके सदर्भयुक्त विवरित करके, मुक्ति विषयक प्राचीन मतव्योको विश्लेषित करते हुए *'अज्ञान तिमिर भास्कर'*-खड १ मे अपने विचार पेश किये है - **"प्रथम तो वेदांतकी मुक्तिमें ही झगड़ा पड़ रहा है । व्यासजीके पिता बादरी-कितनीक वस्तुओंके अभावमें मुक्ति मानते है: उनका शिष्य जैमिनी, उनसे विपरित मोक्ष स्वरूप मानते हैं और व्यासजी उन दोनोंसे भिन्न तीसरे तरहकी मुक्ति मानते है । इससे यह सिद्ध होता है कि वेदोंमें मुक्ति स्वरूप अच्छी तरहसे कथन नहीं किया है, अगर किया होता तो पूर्वोक्त तीनो आचार्योका मुक्ति विषयक अलग-अलग मत न होता । अगर ऐसा कहो कि, वेदोंमें ही तीन प्रकारकी मुक्ति कही हैं, तब तो वेद, एक ईश्वरके बनाये हुए नहीं किंतु तीन जनोंके बनाये हुए हैं और उनकी जैसी समझ थी वैसा उन्होंने लिख दिया । अन्य मुक्तिके स्वरूपमें संशय होनेसे ऐसी तीन प्रकारकी मुक्ति प्रेक्षावानोंको उपादेय नहीं । क्योंकि, तीनोंमें परस्पर विरोध आता है ।"**[९]

इस प्रकार जो मानवभवका प्रमुख सारतत्त्व **'मुक्ति'** मे ही समरसता नही है, तब अन्य जीवन तथ्य निरूपणमे कैसे रगडे-झगडे होंगे यह विचारणीय है । अब *ग्रन्थराज जैन तत्त्वादर्शमे ईश्वरकी सर्वशक्तिमानताको* ललकारते हुए, जो तर्क पेश किये हैं, वे वाकई सरल, मनोरजक, एव अकाट्य तार्किकताके उदाहरण स्वरूप है - **"जब तुमने ईश्वरको सर्वशक्तिमान माना, तब तो ईश्वरकी सर्व शक्तियों सफल होनी चाहिए । तब तो ईश्वर सुंदर पुरुष बन कर सुंदर स्त्रियोंसे कामक्रीडा करें, चोरी, विश्वासघात, जीवहत्या, अन्याय करें, झूठ बोलें, अवतार बनकर गोपियोंसे कल्लोल करें, शिर पर जटा रखें, तीन आंख बनायें, बैल पर चढे, स्त्रीको वामार्द्धांगमें रखें, किसीको वरदान दें और किसीको श्राप दें . अपने आपको अज्ञानी समझें, सब कुछ खाये, पीयें, नाचे, कूदे, रोये-पीटे और साथ ही साथ निर्मल, निरहंकारी, ज्योति स्वरूप, सर्व व्यापक बने—इत्यादि सर्व शक्तियों ईश्वरमे है कि नहीं ? अगर हैं, तब तो उनकी सफलताके लिए उसे उन सभी कार्योंको करना पड़ेगा, क्योंकि वे कार्य न करनेसे वे सर्व शक्तियाँ सफल न होंगी और ईश्वर दुःखी होगा । अगर उपरोक्त सर्व शक्तियाँ उनमें नहीं तो वह सर्वशक्तिमान न होगा । अगर यह कहोगे कि योग्य शक्तियोंकी अपेक्षा सर्वशक्तिमान है, तब जगत् रचनेकी शक्ति भी अयोग्य ही है (इससे पूर्व जगत्कर्ताकी अयोग्यता सिद्ध की गई है) अतः वह भी परमात्मामें नहीं है ।"**[१०]

इस तरह ईश्वर जगत्कर्तृत्व, ईश्वर स्वरूप-लक्षण और गुण, अद्वैतवाद, कर्मवाद, वैदिकी हिंसा आदिके स्याद्वादाधारित स्वरूपोंको विश्लेषणात्मक खड्न-मड्नका निरूपण भी अत्यन्त आकर्षक ढगसे किया है, तो एकान्त और अनेकान्तको नदी और समुद्रके रूपक स्वरूपमे *'अज्ञान-तिमिर-भास्कर'* मे प्रस्तुत किया है । जैसे श्री सिद्धसेन दिवाकरजीम की द्वात्रिंशिका-४-१५ मे दर्शाया है **"सर्व नदियाँ समुद्रमें तो एक साथ**

शैली रूप रगोसे सजाता है । उत्कृष्ट साहित्य सर्जक श्री आत्मानदजी म सा ने भी इसी परम्पराका यथोचित-यथाशक्य परिपालनका यथास्थित-यथावसर निर्वाह किया है ।

कृतियोमे ऐतिहासिकता:— उन्नीसवी शताब्दीका इतिहास राजनैतिक पराधीनताके स्वीकार और लुप्तप्राय हो रहा शुद्ध-सात्त्विक-सासारिक, सामाजिक एवं धार्मिक परपराओके कारण घोर पतनकी करूण कहानी मात्र बन गया था । विश्व विख्यात भारतीय सभ्यताको वहशियाना, साहित्यको पागलोका प्रलाप एव सर्वविध निपुण पूर्वजोको old fools 'मूर्खके नामसे पुकारा जाने लगा था । पाश्चात्य सभ्यता और पाश्चात्य धार्मिक विचारधाराके निरतर आक्रमण भारतीय सस्कृतिकी जडोको प्रतिक्षण खोखला कर रहे थे। नूतन शिक्षण प्रणालिके परिणाम स्वरूप युवावर्ग स्वत्वको विस्मृत करके विचार-वाणी-वर्तन वेश और खान-पानमे पाश्चात्योकी नकल करनेमे गौरव समझ रहे थे । यदि ऐसे वातावरणमे—उस समय श्री आत्मानदजी म सदृश महापुरुष जन्म न लेते तो आज इस भारतीय सभ्यता और सस्कृतिकी कैसी दुर्दशा होती ! शायद हमारे लिए यह जानना असभव हो जाता कि, किसी एक समयमे भारत आध्यात्मिकादि अनेक श्रेष्ठ विद्याओमे विश्वका गुरु (सर्वोपरि) रहा है ।

"अतीतका इतिहास वर्तमान प्रगतिका मुख्य साधन बन सकता है !" इस वास्तविकता पर गौर करते हुए, आज इस आसन्न अतीतके इतिवृत्तो-ऐतिहासिक तथ्योसे हमे बोध ग्रहण करना है प्रेरणाके पीयूषपान करने है और सम्प्रतिक-कालमे तरोताजा स्फूर्ति प्राप्त करनी है जिससे, तत्कालीन जो सर्वनाशका बीज, अपना घटाटोप-वृक्ष स्वरूप बनाकर वर्तमानमे भारतीय सस्कृतिको नष्ट-भ्रष्ट करनेमे अपनी समस्त शक्ति आजमा रहा है, उसका मुकाबला करके भारतीय सभ्यताका और सस्कृतिका मस्तिष्क पुन गौरवान्वित बनाकर उन्नत कर सके ।

अत यह बात निश्चित ही है कि अतीतका-इतिहासका अध्ययन वर्तमानका पथ प्रदर्शक बन सकता है, जिसका निर्माण महापुरुषो, महाननेताओ, महान धर्मगुरुओ एव अन्य विशिष्ट व्यक्तियोके चरित्र पर आधारित होता है ।

श्री आत्मानदजी म का जीवन भी इतिहासका एक स्वर्णिम पृष्ठ बन चूका है । उन्होने ऐतिहासिक दृष्टिसे जो योगदान दिया है वह नि शक अपना अनूठा महत्व स्थापित करता है जिससे दो महत्वपूर्ण दृष्टिकोण दृश्यमान होते है !*(१) अतीतके एतिह्य इतिवृत्तोका उद्घाटन और (२) स्वयके व्यवहार तथा उनके पारिवेशिक वृत्तांतोसे निष्पन्न तत्कालिन इतिहास सर्जन* । यहाँ हम, उन्होने अपनी कृतियोमे जिन महत्वपूर्ण ऐतिहासिक विषयो, वर्णनो एव वृत्तातोका निरूपण किया है, उस पर दृष्टिक्षेप करेगे, जिससे शैक्षणिक, साहित्यिक, दार्शनिक, धार्मिक, सामाजिक, राजकियादि सभी क्षेत्रोके अतर्गत ऐतिहासिक प्ररूपणाओका परिचय प्राप्त हो सके ।

शैक्षणिक और साहित्यिक—यदि साहित्य शिक्षणका अग है, तो शिक्षण, समाजका हृदय कहा जा सकता है । बिना शिक्षाके तो किसी भी समाजका अपना चैतन्यमय अस्तित्व बनाये रखना नामुमकिन है । उन्होने पूर्वाचार्योके रचित उन शिक्षा-प्रदाता ग्रन्थोको हिन्दीमे अवतरित किया । आत्माके अहितकारी आर्त-रौद्र एव उपकारी-हितकारी धर्म-शुक्ल—इस ध्यान चतुष्कका परिचय श्री जिनभद्रगणि क्षमाश्रमण विरचित *'ध्यान शतक'* नामक सस्कृत ग्रन्थ आधारित दिया है जिससे पाठक वर्गको इनके लक्षण-स्वरूप-परिणामादिका अभिज्ञान हो सके और आत्मिक अहितकारी कुध्यान-द्वयसे निवारण करके आत्मरक्षापूर्वक हितकारी सुध्यान शुभध्यान-द्वयका आराधन करके आत्म कल्याण कर सके । इसी *बृहत नवतत्त्व सग्रह* ग्रन्थमे आगमोके साक्षिपाठ देते हुए आपने अनेक जीवनोपयोगी सैद्धान्तिक तत्त्वोको वर्गीकृत करके अपनी अनूठी 'कोष्टक' (तालिका) शैलीमे (Table type) इस प्रकार निरूपित किया है, कि अध्येताको उन्हे हृदयगत करनेमे सरलता बनी रहे

'तत्त्व निर्णय प्रासाद' ग्रन्थमे आपने श्री हरिभद्र सुरीश्वरजी म सा , श्री हेमचद्राचार्यजी म सा , श्री वर्धमान सूरि म आदिकी रचनाओ पर सरल हिन्दी भाषामे बालावबोध एव विवेचन प्रस्तुत किये है, तो

प्रवेश कर सकती है, परतु समुद्र किसी भी एक नदीमें पूर्ण रूपेण नहीं समा सकता; वैसे ही स्याद्वाद (अनेकान्तवाद) स्वरूप जैन दर्शन-समुद्र है जो किसीभी एक नदी रूप (एकान्त नय रूप) अन्य दर्शनोंमें पूर्ण रूपेण समुच्चयसे नहीं समा सकता । उन सर्व दर्शनोंके (नयवादोंके) समन्वय, समुद्र रूप जैन दर्शनमें तो प्राप्त हो जाते हैं ।"[31]

ऐसे ही अनेक दार्शनिक और धार्मिक एव सैद्धान्तिक तथ्योके निरूपण उनके प्राय प्रत्येक ग्रन्थमे कदम कदम पर बिखरे पडे हैं, जो जैन दर्शन और धर्मकी श्रेष्ठता प्रमाणित करनेवाला सिद्ध हो सकता है, जिससे परवर्तीकालमे भी भव्यजनोको आत्म कल्याणका मार्गदर्शन करते हुए उपकारक बन सकता है

सामाजिक—भारतीय समाजके प्रतिमा पूजनकी परपरा विश्वविख्यात है और मनोवैज्ञानिक तौर पर सफल प्रक्रियाके रूपमे मानसिक शान्ति-शक्ति और स्थिरताके लिए आवश्यक भी है इसे केवल बूत परस्त कहकर उसका परिहास करना यह अकलका अजीर्ण है । सामाजिक श्रद्धाका यह अभिन्न अग है उस प्रतिमा ... के विरोधक विरोध करके, प्रतिमा पूजनको प्रमाणित करनेके लिए *"सम्यक्त्व शल्योद्धार* ग्रन्थकी रचना की गई है जो जैन समाजके श्री रत्नविजयजी म द्वारा प्रतिक्रमण (जैनधर्मकी एक दैनिक आवश्यक क्रिया) मे 'तीनथुई'के व्यवहारको प्रचलित करवानेवाले विधानरूप उत्सूत्र प्ररूपणाको अनेक आगम शास्त्रो एव गीतार्थ पूर्वाचार्योके ग्रन्थोके सदर्भोको उद्धृत करके *चतुर्थ स्तुति निर्णय-भाग-१-पृ १२१* और १४० की रचना करके जैन समाजको सच्चे राह पर स्थिर होनेके लिए प्रेरणा दी है - **"हे भोले श्रावकों, तुम जो अपनी आत्माके कल्याणके इच्छुक हो, अरु परभवमे उत्तमगति, उत्तमकुल पाकर बोधिबीजकी सामग्री प्राप्त करनेके अभिलाषी हो तो तरनतारन श्री जिनमत सम्मत हजारो पूर्वाचार्योके चार थुइयोके मतको छोड़कर दृष्टिराग से श्री जिनमत विरुद्धमतको कदापि काले अंगीकार न करो न इसका विचार करो । .. अपने जैनमतमें बहुत पंथ प्रचलित हो गये हैं ..... कोई विकारी जनोंके कथनसे पूर्वाचार्योंके कथनको कुयुक्तिसे तोड़-फोड़ करनेका झूठा हठ न करो ।"**[32]

इसके अतिरिक्त *"तत्त्व निर्णय प्रासाद"* मे मथुराके कंकाली टीलेके और अन्य शिलालेखोके सदर्भोको प्रस्तुत करके उनकी प्रतिलिपि और उनका अर्थघटन करके इतिहासालेखनमे अत्यावश्यक और अत्युपयोगी सामग्रीकी पूर्ति की है । ऐतिहासिकताका विशिष्ट महत्त्व उनके अतरस्थ हो गया था, यही कारण है कि, उन्होने विश्वस्तरीय जैनधर्म यशध्वजा-कीर्तिपताकाको लहरानेमे श्री वीरचदजी गाधीको चिकागो-विश्वधर्म परिषदमे भेजकर और योरपीय विद्वानोको अत्युपयोगी-यथार्थ मार्गदर्शन देकर एव विदेशीय भाषाभाषी पत्रपत्रिकाओमे जैन धार्मिक सिद्धान्तादिका मुद्रण करवाकर सार्वभौम जैनधर्मकी शिराओको समस्त ससारमे प्रचारित करनेके भगीरथ पुरुषार्थ करके अपनी विशिष्ट दुरंदेशीयता और धर्म प्रभावनाकी उत्कट उत्कठाका परिचय दिया है

इस तरह इनके गद्य-पद्य साहित्य और पत्र-पत्रिका-लेखादि अनेकविध साहित्यिक कृतियोंमे तो ऐतिहासिकताकी केवल झलके मिलती है, लेकिन उनकी *"जैन-मत-वृक्ष" रचना तो पूर्णरूपेण ऐतिहासिक कृति ही है;* जिनमे साम्प्रत अवसर्पिणीकालकी वर्तमान चौबीसीके श्रीऋषभदेवसे श्री महावीर स्वामी पर्यत और श्री सुधर्मा स्वामीसे श्री आत्मानदजीम सा पर्यतकी भ महावीरकी समस्त पट्ट परपरा, इतर धार्मिक मतोकी परपराका प्रारम्भ, और प्रारम्भके कारणोका वृत्तान्त समय-स्थानादि आलेखन त्रेसठ शलाका पुरुषोका इतिवृत्त और चरम तीर्थपतिके शासनके राजाओकी तवारिखादि अनेक अत्युपयोगी एतिह्य सामग्रीका चित्रण करके तो आश्चर्यकी अवधि प्रसारित की है । इन सभीका सुविस्तृत परिचय पर्व ...र्थमे करवाया गया है ।

जिस प्रकार पूर्वाचार्योकी कृतियोसे तत्कालीन तथ्यो और इतिवृत्तोकी प्रामाणिक, शृखलाबद्ध ऐतिहासिक सत्यताकी प्रतीति होती है वैसे ही श्री आत्मानदजी म सा के साहित्यमे भी उनके द्वारा की गई धार्मिक दार्शनिक, सामाजिक, नैतिक, शैक्षणिक, साहित्यिक प्ररूपणाओके आधार पर तत्कालीन परिस्थितियोकी सिलसिलेवार तवारिख प्राप्त होती है । यद्यपि जैनेतर साहित्यमे आचार्य प्रवरश्रीकी उल्लेखनीय साहित्यादि अनेकविध सेवाओका जिक्र नगण्य है, फिर भी वह अविस्मरणीय महत्व बनाये रखता है । उनके साहित्यके अध्ययनके

निष्कष रूपमे हम यहा कह सकते है कि तत्कालीन श्री दयानदजीके वेदादि ग्रन्थोके स्वच्छद मतिपूर्वक, मनघड़त और भ्रामक अर्थघटनका उद्घाटन, राजा शिवप्रसाद सितारेहिंदके *इतिहास तिमिर नाशक* ग्रन्थकी भ्रमजन्य गैर-समजुतीसे व्युत्पन्न धर्म सबधी झूठी प्ररूपणाओकी स्पष्टताये, शकर स्वामी आदि अनेको द्वारा किये गये भ्रातिजन्य खडनात्मक आक्षेपोका प्रत्युत्तर, जैनधर्मकी ऐतिहासिक परापूर्व... और शाश्वतताका-जैनोकी जीवसेवा, जनसेवा और समाजसेवाका मानो प्रत्यक्ष चित्रण, तत्कालीन नूतन शिक्षा प्रचारके किंपाक फल सदृश परिणामोका तत्कालीन समाजके धार्मिक, सामजिक, शैक्षणिक, साहित्यिकादि अनेकविध क्षेत्रोमे प्रसारित गहरी निंदका जो चित्रण मिलता है वह वास्तवमे अपने आपमे तत्कालीन इतिहास स्वरूप ही है ।

निर्भीक सत्य प्ररूपणा :- लोक कल्याण और सत्यमार्गके ... सफलताका राज उनके ठोस ज्ञान सत्य प्ररूपणा और किसी भी उपस्थित परिस्थितिका मरदानगीके साथ सामना करनेमे है । केवल सत्य और शिस्तके पूजारी नीडर वीर श्री आत्मानदजी म.सा.का ढूढक सतसे सविज्ञ साधुजीवनमे प्रवेश, उनकी उत्कृष्ट मनोदशा, निदा-सामाजिक परिताप और विरोधके बवडरको सहते हुए भी, सत्य स्वीकारकी नम्रता एव नैतिक हिमतका ही परिणाम माना जा सकता है, जो उनके जीवनके सच्चे माहात्म्यको स्पष्ट करता है । ... भी सच्ची साधनाके साधकका एकमेव लक्ष्य सत्य सिद्धान्तका अन्वेषण—पालन और प्रचार ही है, जिससे मिथ्या रूढि, कुरिवाज और अध परपराओकी शृखलाको तोडकर पूर्वाग्रह रहित नवनिर्माणकी प्रतिष्ठा हो । उन्ही निर्भीक सत्य प्ररूपणाओका उनके समग्र साहित्य पर भी जो साधारण प्रभाव बना रहा है, यहाँ उन्हे ही स्पष्ट करनेका प्रयास किया गया है ।

सत्यका साक्षात्कार होने पर उसके प्रचार हेतु सन्नद्ध उस निर्भीक वीरको गुरु जीवनरामजीने सर्व प्रथम यह समझाया था - **"वत्स ! अपने क्रान्तिकारी विचारोंको अपने मनमें रखो, क्योंकि, उन्हें प्रकट करनेका मार्ग कंटकाकीर्ण हैं । पढे लिखे साधु भी झूठी और शास्त्र विरुद्ध रूढियोंके जालको तोड़नेमें असमर्थ हैं । क्योंकी आदत, चाहे वह नियम विरुद्ध भी हो, उन्हें छोड़नेका साहस किसी विरलेमें ही होता है । पंजाबमें पूज्यजी साहबका बहुत जोर है । सब लोग उनके पीछे हैं, और तुम अकेले हो ।"** उसी समय आपने प्रत्युत्तर दिया था, **"मैं अकेला नहीं हुं गुरुदेव ! मेरे पीछे सत्यका बल है । लोगोंके लाख विरोध करने पर भी वे सफल नही हो सकेंगे । .... आप किसी भी प्रकार की चिंता न करे, सत्यके पूजारीके सामने भयको कभी कोई स्थान नहीं मिलता ..... सत्यान्वेषीकी वाणी या लेखिनीको आज तक न कोई कुचल सका है, न कोई कुचल सकेगा ।"**[२३]

इस निर्भिकताका निर्घोष प्राय उनकी सभी रचनाओमे प्राप्त होता है । जिस समय सारे भारत वर्षमे श्री दयानदजीके एकेश्वरवाद और प्रतिमा-पूजन-विरोधका तूफान गर्जित हो रहा था, विदेशी शिक्षण नीतिने युवावर्गके दिलो दिमागको चकरा दिया था-ऐसे प्रतिकूल माहौलमें उन्होने मूर्तिपूजाका मडन करके *"अज्ञान तिमिर भास्कर,"* प्रथम खडमे अनेक प्रमाणो और युक्तियुक्त तर्कादिके सहारे उसका सक्षम प्रतिपादन करते हुए ललकारा है—**"सत्यार्थ प्रकाशमें वेदीकी स्थापना, प्रोक्षणपात्र, प्रणिता पात्री, आर्य स्थाली और चमसा (चम्मच) के चित्र पृष्ठ ४१.४२ में दिये हैं । इस सम्बन्धमें मेरा कहनेका आशय यह है कि दयानंदजी अपने शिष्योंको समझाने वास्ते ऐसा चित्र दिखलाते हैं, अर्थात् आकृति (मूर्ति) का स्वीकार करते हैं और बाह्य रूपमे मूर्तिका विरोध करते है, यह कैसा न्याय है ! भला, यह तुच्छ मात्र आहुतिके पात्रोंको बिना स्थापनाके नही समझा सकते है, तो जो महात्मा-अवतार-सत्य शास्त्रके उपदेशक हो गए, ऐसे परमात्माकी प्रतिमाके बिना उनके स्वरूपका कैसे ज्ञान हो सके ? अतः उनकी मूर्ति माननी-पूजनी चाहिए ।"**[२४]

इस ग्रन्थके द्वितीय खडमे भाव श्रावकके भावगत सत्रह लक्षणोमे नवम् लक्षण है—*'गाडुरिका प्रवाहका त्याग'* । उसका विवेचन करते हुए उन्होने लिखा है, **"इस अवसर्पिणी कालमें जब कोई भी धर्म प्रचलित नहीं था, तब श्री ऋषभदेव भगवंतने, सर्वप्रथम केवलज्ञान प्राप्त होने पर सर्वप्रथम 'आर्हतधर्मचक्र' प्रवर्तन किया। तत्पश्चात् मरिचिके शिष्य कपिल द्वारा कापिलिय (सांख्य) मत, पतंजलिसे पातंजल मत, वेदान्त मत, (पूर्व-उत्तर) मीमांसक,**

वैशेषिक, नैयायिक, बौद्धादि प्राचीन मतोंका और विक्रमकी द्वितीय सहस्त्राब्दि में अद्वैत-द्वैत-द्वैताद्वैत, वैष्णव-शैव-स्वामीनारायण-कबीर-नानक-दादू-भक्ति-गरीब-गोरख-रामसनेही-कूका आदि अनेक हिन्दु पंथ; आर्यसमाज-ब्रह्मसमाज-प्रार्थनासमाजादि अनेक मतांतर्गत विभिन्न संस्थायें; मुस्लिमोंका मुस्लिम और क्रिश्चनोंका ईसाई धर्म एवं जैनोंके दिगम्बर-जिनमें मूलसंघ, काष्ठासंघ, माथुरसंघ, गोप्यसंघादि तथा श्वेताम्बर-जिनमें मूर्तिपूजा समर्थक तपागच्छ, खरतरगच्छ, अंचलगच्छ, पूनमिया, नागपुरीय, पार्श्वचंद्र, पल्लिवाल आदि अनेक गच्छ और मूर्तिपूजा विरोधक तेरापंथी, बीसपंथी, गुमानपंथी, तोतापंथी, लूपक (ढूंढक), कडुआ, बीजा, आठकोटि, अजीव, कालवादी, आदि अनेक पंथ या मत-मतांतरोंका प्रचलन विविध महात्माओं द्वारा किया गया है । इन पूर्वोक्त मतोंका विरोध है। ये सर्व मतवाले भेड़तुल्य-जैसे एक भेड़ भा भा करती है, तब सभी भेडें भा भा करने लगती हैं—नवीन मतोंका मानने लग गये है । गड्डरिया प्रवाह समान एकके पीछे सर्व चलते हैं और हल्लो हल्लो करते फिरते है । कोई कसाई बन गया है, कोई महम्मदका कलमा पढ़ने लगा है । इन सर्वमेंसे किसी भी मतवाले शास्त्र पढ़कर तत्त्व तो निकालते नहीं और आत्माकी बरबादी करते हैं । बुद्धिमान् ऐसे गडुरिक प्रवाहको परिहरें।"[४]

*'जैनधर्म विषयक प्रश्नोत्तर'*मे भी साधर्मिक वात्सल्य, रत्नत्रयी और तत्त्वत्रयीकी भक्तिपूर्वक आराधना, सप्तक्षेत्र व्यवस्था, जैन-बौद्ध मतोकी तुलना, कर्म-स्वरूप, मुक्ति-स्वरूप, विश्वधर्म स्वरूप-भेदादि विषयोको विवेचित करते हुए आगमग्रन्थ-*'उत्तराध्ययन सूत्र'* जो श्रीमहावीर स्वामीजीकी अंतिम देशना सकलनके स्वरूपमे माना जाता है—उसे कल्पसूत्रकी मूलटीका *'संदेह विषौषधि'* और श्री भद्रबाहु स्वामीजीकी उत्तराध्ययन निर्युक्ति आदिके संदर्भ देकरके *उत्तराध्ययनके २-८-१०-२३ आदि अध्ययनोकी* रचना या प्ररूपणाके संयोग-समय-स्थानादि दर्शाते हुए वर्तमानमे उत्तराध्ययन सूत्रको जो अंतिमदेशना सकलन स्वरूप माना जाता है, उसे *प्रश्नोत्तर-९४* मे अयुक्त सिद्ध किया है । एक परापूर्वकी श्रद्धेय मान्यताको इस तरह शास्त्रीय शहादतोंके आधार पर निराधार सिद्ध करके अपने स्वतंत्र, फिर भी प्रामाणिक और ठोस—मतव्यको धर्म श्रद्धालु समाजके समक्ष प्रस्तुत करना—किसी विरल व्यक्तित्वका प्रभाव प्रकट करता हैं ।

इस तरह *'तत्त्व निर्णय प्रासाद'* ग्रन्थमे विशेष रूपसे *गायत्रीमंत्रके अर्थ, मनुस्मृति, ऋग्वेदादिके* आधार पर विश्व सृष्टिक्रम, वेदोकी अपौरुषेय रचनामे संदेह और परस्पर कथन भेद अर्थात विरोधाभासके संदर्भ आर्य-अनार्य (पूर्ववर्ती-परवर्ती) वेदके मूलपाठो और अर्थ, विचारणामे विपरितता जैनधर्मकी शाश्वतता सिद्ध करनेवाले उनके उद्गार दृष्टव्य हैं-**"हे भव्य ! जो अनंत तीर्थंकर अतीतकालमे हो गये हैं और आगामी कालमें होंगे उन सर्वकी द्वादशांगीमें तत्त्व विषयक रचनामें किंचित् मात्र भी अंतर नहीं । तत्त्व स्वरूप एक समान होनेसे जो शास्त्र श्रीमहावीरके शासनमें रचे गये हैं, वैसे ही श्री ऋषभदेव भगवंतके समयमे रचे गये थे । इसलिए जैनधर्मके पुस्तकारूढ सिद्धान्त सर्वाधिक प्राचीन सिद्ध होते है । स्वयंकी—'तीर्थंकर नामकर्म'की पुण्य प्रकृतिके भुगतान हेतु (क्षय निमित्त) देशना देनेका उन तीर्थंकरोका कर्तव्य बन जाता है । उस पुण्य प्रकृतिके बिना क्षय, उनकी मुक्ति संभव नहीं है । अतः सभी नूतन तीर्थंकर भी वे ही प्राचीन सिद्धान्तोंकी ही व्याख्या करते है । इस प्रकार सैद्धान्तिक प्रवाहापेक्षया नवीन प्रतीत होनेवाला जैन दर्शनका साहित्य प्राचीन है-शाश्वत है ।"[५]**

इस प्रकार हम अनुभूत कर सकते है कि, श्री आत्मानंदजी म.सा.ने अपनी रचनाओमे जो जिनेश्वर भगवतकी एवं अपने पूर्वाचार्योकी जो प्ररूपणाये सत्यकी कसौटी पर प्रमाणित हुई उन्हे स्वीकार करके किसीके भी अन्यायी दबाव या वर्चस्वके वशीभूत हुए बिना ही सत्यकी प्ररूपणा की । इसके अतिरिक्त भी उनके *'जैन तत्त्वादर्श,' 'चतुर्थ स्तुति निर्णय', 'ईसाई मत समीक्षा', 'सम्यक्त्व शल्योद्धार' 'चिकागो प्रश्नोत्तर' आदि अन्य ग्रंथोमे* भी ऐसे अनेक उदाहरण कदम कदम पर प्राप्त होते है, जो विस्तार भयसे उद्धृत नहीं छोड़ दिये गये हैं ।

धार्मिक निरपेक्षता:—विश्वकी विषैली समस्याओके समाधानका प्रस्तुतकर्ता—विश्वैक्य भावनाका उद्घाटक, धर्म कट्टरता, धर्मोन्माद, और धर्मांधतासे मुक्ति प्रदाता एवं मनुष्य जीवनके शुद्ध और सत्य स्वरूपको स्पष्टतया

प्रदर्शितकर्ता स्वच्छ दर्पण-तुल्य, तटस्थ, स्वतंत्र, निष्पक्ष अनेकान्तवाद और उसकी विचारधारा ही विश्वशांतिकी एकमात्र आधारशिला बननेमे सक्षम है । ऐसे सामर्थ्यवान-उदार हृदयी अनेकान्तवादकी जडे जिस धर्मरूपी वटवृक्षको जीवत और हरा-भरा रखती हैं, वह धर्म औ· सके श्रद्धावान् धर्मीका भी वैसे ही महामना-विशाल हृदयी होना विस्मयकारी नही । जिन्होने पूर्वावस्थामे जैनधर्म प्रति द्वेषभाव रखा था, ऐसे जैनधर्मके पूर्वाचार्यो--श्रीसिद्धसेन दिवाकरजी, श्रीहरिभद्र सुरीश्वरजी आदि अनेक विद्वानोने भी जैन सिद्धान्त-स्याद्वाद और अनेकान्तवाद--के हार्दको पाकर और जैनधर्मको आत्मसात करते हुए प्रमुदित होकर उदघोषणा की–

"त्यक्त स्वार्थ: परहितरत: सर्वदा सर्व रूप,

सर्वाकारं विविधमसमं, यो विजानाति विश्वम् ।

"ब्रह्मा विष्णुर्भवतु वरद: शकरो वा हरो वा,

यस्याचिन्त्यं चरितमसमं भावतस्तं प्रपद्ये ।।"

ठीक उसी प्रकार उनके ही चरणारविंद पर चलनेवाले श्री हेमचंद्राचार्यजी म भी ऐसी ही उदारताका परिचय करवाते है -

"न श्रद्धयेव त्वयि पक्षपातो, न द्वेषमात्रादरूचि: परेषु ।

यथावदाप्तत्वपरिक्षया तु त्वामेव वीर प्रभुमाश्रिता: स्म: ।।"

इसी भावनाका प्रतिघोष आचार्य प्रवरश्री, आत्मानंदजी म सा ने भी अपनी रचनाओमे दिया है । *"जैनधर्मी द्वेष बुद्धिसे वेदोकी निंदा करते है ।"*-इसके प्रत्युत्तरमे वे लिखते है, **"हे प्रियवर ! वेदोमें जो जो वैराग्योत्पादक-निवृत्तिमार्गके वचन(प्ररूपणायें) वेद, उपनिषद, ब्राह्मण, आरण्यक, स्मृति, पुराणादिमें लिखे है, वे सर्व जैनमतवालोंको सम्मत है ..... परंतु जो हिंसक और अप्रमाणिक (प्रमाण बाधित) वचन हैं, वे जैनोंको सम्मत नहीं-असर्वज्ञ मूलक होनेंसे.....हे प्रियवर ! इस कालमें वैदिक मतवाले जैनोंको द्वेष बुद्धिसे नास्तिक कहते हे, लेकिन जैनाचार्योंने जो जो वेदबाबत लेख लिखे है, वे सर्व यथार्थ तत्त्वके बोधवास्ते लिखे हैं, न तु द्वेष बुद्धिसें ।"**[२४]

आत्माका शुद्ध स्वरूप होता है, एकमात्र परमात्म स्वरूप, लेकिन अनादिकालीन आवरणोकी मलिनताके कारण उद्भूत होती है, विश्वमे दृश्यमान उसकी विभिन्न दशाये-जिससे आत्माका बहिरात्म स्वरूप स्पष्टतया प्रकट होता है । जितने प्रमाणमे ये कर्मावरण घने होतेहै, आत्माकी उज्ज्वलताको उतने ही प्रमाणमे कलुषित बनाते है, इससे आत्माकी विभिन्न चित्र-विचित्र परिस्थितियॉ निर्माण होती है और उन कर्मावरणोकी जितनी अल्पता या मंदता होती है, आत्माको उतनी ही उत्तमता, महानता और श्रेष्ठता प्राप्त होती है, जिसे आत्माकी अंतरात्म दशाके नामसे पहचाना जाता है । उस अंतरात्म दशामे उसका व्यक्तित्व धार्मिक उदारता, व्यापकता, समन्वयवादिता एवं सहिष्णुतासे छलछलाता है; क्योकि वीतराग-सर्वज्ञ-सर्वदर्शी-परमात्माका चरणसेवक संकीर्ण, राग-द्वेष वर्धक, अनुदार या एकान्तिक दृष्टि रख ही नही सकता उसके अंतरमे सच्चा सो अपना की तरगे निरंतर अठखेलियॉ करती रहती है ; वह षड्दर्शनका आराधक बन जाता है । सर्व दर्शनोके प्रति उसके दिलमे सहिष्णुता होती है । यही कारण है कि श्री आत्मानंदजी म सा ने *"चिकागो प्रश्नोत्तर"* मे *"सच्चे व्यापक और कल्याणकारी सिद्धान्त किसी व्यक्ति या समाजकी निजी पैतृक संपत्ति नही होते बल्कि, जीवमात्रके लिए व्यवहार्य होते है"* इस भावनाको प्रदर्शित किया है। उनकी ऐसी ही आंतर्दशाको अभिव्यक्ति प्राप्त है *"अज्ञान तिमिर भास्कर" की प्रस्तावना-पृ ७ मे* **"कोई पण निष्पक्षपाती तत्त्व जिज्ञासु पुरुष आ ग्रन्थनुं स्वरूप आद्यत अवलोकशे तेने जणाशे के एक जैनना समर्थ विद्वाने भारतवर्षनी जैन प्रजानो भारे उपकार कीधो छे ।"**

ऐसी उत्तमता प्राप्त अंतरात्माके प्रबल धर्म पुरुषार्थके परिणाम रूप अंततोगत्वा एक समय ऐसा आता है कि कलुषित आत्मपात्र-स्थित सर्व अशुद्धियॉ खत्म हो जाने पर उसका शुद्ध-स्फटिक सदृश स्वरूप-परमात्म दशा-उसे प्राप्त होता है । इन्ही बातोको श्री आत्मानंदजी म ने अपने *"अज्ञान तिमिर भास्कर"* ग्रन्थको समापन

करते हुए मुक्ति विषयक प्ररूपणा अनतर **"चैतन्य स्वरूपः परिणामी कर्ता साक्षात् भोक्ता स्वदेह परिमाणः प्रतिक्षेत्रं भिन्नः पौद्‌गलिकं दृष्टाश्चर्यमिति"**-*'तत्त्वालोकालकार'* *सूत्रानुसार* आत्म स्वरूपोकी प्ररूपणा की है।

ससारी आत्माकी एकमात्र ख्वाहिश सुख प्राप्ति, जिसे परिपूर्ण करनेके लिए वह विपरित विचार-वाणी-वर्तनका आश्रय लेते हुए, मोल लेते हैं-अनेक प्रकारके कर्मबधनोको. लेकिन जब उन्हे उस भ्रमजन्य, दुख-मूलक, भव-भ्रमणमे हेतुभूत बहिरात्म दशा या विभाव दशाका एहसास हो जाता है, उसके नुकशान जब नयनोमे नर्तन करते है, तब तत्क्षण अपने आप ही उन्हे त्याज्य मानकर उनसे मुह मोड लेता है और शाश्वत आत्मिक सुखको प्राप्त करवानेमे सहायभूत शुद्ध धर्म वत्तिकी ओर मुड जाता है । इस प्रकार जागृत आत्मा समस्त मानव समाज और उससे भी एक कदम आगे सकल विश्व-जीवसृष्टिको एक सूत्रमे पिरोनेवाले *'वसुधैव कुटुम्बकम'की* भावनाको आत्मसात करके जैनधर्मानुसार अहिंसा, अमषा, अस्तेय, अब्रह्म-त्याग, और अपरिग्रहके पचामृत रूप सिद्धान्तोके आश्रयमे रहकर हिसा, झूठ, चोरी, चारित्र-हीनता, जातीय या वर्गीय असमानता और एकान्तिक स्वार्थांधता स्वमत दुराग्रह आदि विषैले कुभावोसे ऊपर उठकर सहनशीलता, सहिष्णुता, सत्यप्रेम, उदारता, चारित्रिक उदात्तता, निष्पक्षतादि सद्‌भावोको प्राप्त उच्च मानवीय कक्षाको (अतरात्म दशाको) प्राप्त कर लेता है । मानव मात्रकी (जीव-मात्रकी) उस उत्कृष्ट आत्मिक मानसिक और शारीरिक परिस्थितियोकी कार्यान्वित शक्तिको ही 'धर्म' सज्ञा प्राप्त होती है । ऐसे धर्मका कोई भी नाम हो या कोई भी धाम हो-आठों याम वही आदरणीय, आचरणीय, आराधनीय, साधनीय है - इसीको अनेक प्रसिद्ध और महान विद्वान जैनाचार्योने विविध रूपोमे प्रस्तुत करके जैनधर्मकी स्वतत्रता, सहिष्णुता और तटस्थताके आदर्श उपस्थित किये है । उसी विचारधाराको आचार्य प्रवरश्रीने प्रवाहित किया है ।

अन्य देवोके गुणावगुणोका वर्णन करते हुए अरिहत भगवतोकी श्रेष्ठता विषयक विचार प्रस्तुत किये है - **"अर्हत परमेश्वर ही सर्वज्ञ और सच्चे धर्मके उपदेशक हैं, अन्य नहीं । जेकर कोई ऐसा कहें कि जैनोंने अर्हतोंके वास्ते अच्छी अच्छी बातें अपने पुस्तकोंमें लिख दी हैं तो हम कहते हैं कि, अन्य मतवालोंको किसने रोका है, जो तुम अपने अवतारों वास्ते अच्छी बातें मत लिखो । परंतु जैसा जिसका चाल-चलन था, वैसा ही लिखनेवालोंने लिखा है । जैसे भर्तृहरिजीने अपने** 'शृंगार शतक'मे लिखा है -

"शंभु स्वयंभु हरयो हरिणेक्षणानां, येनाक्रियंत सततं गृहकर्म दासा: ।

वाचामगोचर चरित्र विचित्रताय, तस्मै नमो भगवते कुसुमायुधाय ।।"[34].

अत श्रीसिद्धसेन दिवाकरजी म , श्रीहरिभद्र सुरीश्वरजी म , श्रीहेमचद्राचार्यजी म आदिकी धार्मिक निरपेक्षताको-धार्मिक गुणाश्रयी निष्पक्ष, तटस्थ, स्वतत्र और स्पष्ट धारणाओको-श्री आत्मानदजी म सा ने मुक्तमनसे प्रशंसित किया है । वे गुणके पूजारी है-वेशके नही, उनकी श्रद्धा शुद्ध एव सात्त्विक आचारोके प्रति है, रूढि या अनाचारोके प्रति नही है । यही कारण है कि **"सच्चरित्र ही सच्ची मनुष्यताका मापदंड है ।"**-की उद्‌घोषणा करते हुए उन्होने इतर धर्मके देवोकी हीन चारित्रके कारण ही भर्त्सना की है और सत्प्रेरणा दी है - **"हम बहुत नम्रतापूर्वक विनती करते है कि कदाग्रह छोड़कर प्रेक्षावानोंको यथार्थतत्त्वका निर्णय करना चाहिए ।..... वेद, स्मृति, पुराण तथा जैन, बौद्ध, सांख्य, वेदान्त, न्याय, वैशेषिक, पातंजल, मीमांसकादि सर्वशास्त्रोंके कहे तत्त्वोंकी प्रथम श्रवण, पठन, मनन, निदिध्यासनादि करके जिस शास्त्रका कथन युक्ति प्रमाणसे बाधित हों, उसका त्याग कर देना चाहिए और युक्तिप्रमाणाबाधित हों, उसको स्वीकार कर लेना चाहिए । परंतु मतोंका खंड़न - मंड़न देखकर किसी भी मत पर द्वेष बुद्धि कदापि नहीं करनी चाहिए ।"**[35] क्योकि ज्ञानी महापुरुषोने तो ऐसी राग-द्वेषयुक्त, स्व-परके गुणदोषोके परीक्षणमे मोहाधता, स्वमताग्रहता, कूप-मडूकता और दृष्टिरागयुक्त मुग्धताको स्वशक्तिके निरतर दुर्जय रूप ही माना है । यथा -

"अहो विचित्रं मोहान्ध्यं, तदन्धैरिह यज्जनैः; दोषा असन्तो पीक्ष्यन्ते, परे सन्तोऽपि नात्मनि ।।"

इस प्रकार हम देखते हैं कि, उनकी धार्मिक निरपेक्षता साम्प्रतकालीन धर्म निरपेक्षता सदृश-कथिर-कंचन, या उत्तम-अधम, साक्षर-निरक्षर या प्रधान-प्यून-सभीको तुल्य माननेवाली, सभीको एक डंड़ेसे भगानेवाली

साम्यवादी नही है, न 'सर्वधम एकसमान'के मूखतापूर्ण प्रलापका उदघोषक, लेकिन विचक्षण-वि॰ ॥ परिखोको गुण **सापेक्ष-निरपेक्षताको लेकर प्ररूपित हुई हैं । अत** वे जिन अव्यवहार्य एव परिहार्य योग्य, **धार्मिक** सिद्धान्तोका कड़ीसे कड़ी आलोचनाके साथ खड़न करते है, उन्ही **धर्मोंके** सुदर परिणाम युक्त **वैश्विक** सामाजिक और व्यावहारिक सेवाओको धुवाद देनेमे भी नही हिचकिचाये-यथा - **"अन्य धर्मोंने अपने धर्मग्रन्थमें ईश्वर भक्ति, दया, दान, सत्य, शील, संतोष, क्षमा, आर्जव, मार्दव, विनय, परोपकार, कृतज्ञतादि शुभ प्रवृत्तियोंका जो उपदेश दिया है, उससे मनुष्य जातिका इहलौकिक और पारलौकिक उपकार ही हुआ है, किंतु देव-गुरु-धर्मका विपर्यय बोध** कराया है, उसमे मनुष्य जातिका बहुत नुकशान होगा"[11]

उनका खयाल था कि सब धर्मोंको अपने प्रचारमे 'शिवमस्तु **सर्व जगत**'के शाश्वत सत्य और प्रमाणिकता, सहिष्णुता, उदार दृष्टिबिंदु आदि अख्तियार करने चाहिए । अत उन्होने प्रेरणा दी है कि **"बहुत मतवाले अन्योंको अपने मतमें मिलानेके लिए जो जबरदस्ती करते हैं, डर दिखाते हैं, अनेक प्रकारके नुकशान करते है या लालच देते है, यह तो अनुपयुक्त, असमीच - और अवांछनीय हैं..... परतु हम सभी मतवालोंको नम्रतापूर्वक विनती करते है कि, अपनी जाति या मतमे कहे हुए बूरे कार्योंको (जो विश्व जीव सृष्टिके लिए हानिकारक हों) उसे छोड़कर अपने आपको योग्य धर्माधिकारी बनाये,' सर्व पशु-पक्षी और मनुष्यों पर मैत्रीभाव धरें और देव-गुरु-धर्मकी परीक्षा करके यथार्थ शुद्ध-सच्चे धर्मकी प्राप्ति करे ।"**

उनकी इस सत्य-पक्षपाती धर्म निरपेक्षताके विषयमे श्री नागकुमार मकातीके विचार दृष्टव्य है - **"उन्होंने ढूंढक मतका त्याग करके संविज्ञ दीक्षा ग्रहण की, उसमे ढूंढकोको उदासीन या संविज्ञोंको आनंदित होने जैसा कुछ भी नहीं है, क्योंकि उसमें न ढूंढकोंकी हार है न संविज्ञोंकी जीत; लेकिन यह जय-पराजय सत्यासत्यका है, जो उस महापुरुषकी उत्कृष्ट मनोदशा, सत्य स्वीकारकी तमन्ना और नैतिक हिंमतका परिणाम माना जा सकता है ।"**[12] यहाँ हमे उनकी स्वतत्र-निष्पक्ष धर्मनिरपेक्षताके मूलाधार "सत्यप्रियता" के दर्शन होते है ।

निष्कर्ष रूपमे हम यह कह सकते है कि, जन्मजात क्षत्रिय, परवरिश स्थानकवासी-फलत ढूढकमतकी दीक्षा स्वीकारनेवाले, लेकिन, सत्य दीपककी ज्योतकी ज्योतिसे आकर्षित होकर, बाईस वर्षका दीक्षापर्याय एव साम्प्रदायिक मान-सम्मानयुक्त आकर्षक-लुभावनी जिदगीको भी पतगे सदृश उसमे स्वाहा करके सविज्ञ शाखीय दीक्षा अगीकृत करनेवाले उस सत्यधर्म-प्रिय महारथीने अपने साहित्य सुमनोसे जैनधर्मके अनेकान्त-सापेक्षतायुक्त निरपेक्षताकी सुवासको वितरित करते करते सभीको सन्मार्गदर्शन देकर विश्व कल्याणकी उदात्त भाव से प्रसारित किया है ।

सामाजिक सुधारः— जैनसघ समेत भारतीय समाज पूजीवाद और सामन्तवाद, साम्यवाद और मार्क्सवाद, समाजवाद और साम्राज्यवाद, प्रगतिवाद और रूढ़िवाद, भौतिकवाद और आध्यात्मिकवाद आदि तत्कालीन अनेक वादोकी चक्कीमे पीसा जा रहा था । बुद्धिवादिता, सकीर्णता और असहिष्णुताके प्राधान्यसे वर्गसघर्ष प्रतिदिन फलने-फूलने लगा था । राजकीय-प्रशासकीय, सामाजिक एव आर्थिक शोषणोके निरतर होनेवाले प्रहारोसे सामाजिक शक्तियाँ तितर-बितर हो गयी थी । पाश्चात्य शासकोकी पूजीवादी-शोषक रीति-नीतियोके कारण जातीय समानताके बिगुलो और भेरीनादोके शोर बीच भारतीय समाज एक नयी ही आर्थिक वर्ग विग्रहतामे बूरी तरह उलझ गया था । परिणामत धनवान अधिक धनवान होते जा रहे थे और निर्धन अधिक निर्धन बनते गये थे । ऐसी विषम उलझनोमे फसे समाजके राहबरके रूपमे भीष्म ब्रह्मचारी श्रीआत्मानदजी म सा की सामर्थ्यवान आतरिक जीवन शक्तिका स्रोत जनमात्रके जन जनके और सर्व जैनोके मगलमय जीवन और आत्मिक कल्याण हेतु सम्पूर्ण समर्पण भावसे प्रवाहित हुआ । उन असमानताओको तिरोहित करने हेतु उन्होने अपनी वेधक और दूरदर्शी दृष्टि एव विलक्षण प्रतिभासे शोषणहीन-सभ्य और सस्कृत समाजके लिए कुछ क्रान्तिकारी और सुधारक विचार प्रस्तुत किये, जिसके अतर्गत कोई भी धार्मिक महोत्सव (पूजन-प्रतिष्ठा-दीक्षादि) या शादी-ब्याह आदि जीवन व्यवहारमे होनेवाले लेन-देन रूप दहेजादिके विषचक्र, भोजन समारभ या अन्य फिजूल खर्च पर नियमन, धनिकोको सम्पत्ति प्रदर्शन अथवा इज्जत-

नामदारीकी झूठी प्रशसाक धक्करोसे बचनेका आदेश अज्ञानका निवारण हेतु ज्ञान(शिक्षा) प्रचारादि यथाथ **पुरुषार्थकी प्रेरणा-आदिके प्रस्पक आचार्य प्रवरश्री**ने अपने विचारोको वाङमय द्वारा और वाणीको प्रवचनो द्वारा प्रकाशित करते हुए दोहरे उद्यम किये ।

स्वस्थ समाजकी ख्वाहिशको परिपूर्ण करने हेतु अपनी पैनी दृष्टिसे दृष्ट समाजकी ह्रास होती जा रही नैतिकताका मूल्य पुनः स्थापित करने हेतु पुरुषार्थी अभिगम आजमाना प्रारम्भ किया । उनकी विचारधारानुसार स्वस्थ और सुखी समाजके लिए श्रेष्ठ मार्ग है ऊँच-नीच छोटा-बडा, धनवान-निर्धन आदिकी अधकारमय भदरेखाओको धार्मिक एव व्यावहारिक शिक्षा निसृत अभेद दृष्टिके उज्ज्वल आलोककी अत्यधिक आवश्यकता है किसी भी शिक्षित व्यक्तिका ज्ञानालोक उसे अन्योन साथ प्यार राहतकी डगर पर कदम रखनेके लिए प्रेरणा देता है, विश्वके जीवोको स्नेहासिक्त सरोवरमे ... करवाकर स्वच्छ और निर्मल आत्मीयताका निर्माण करनेमे सहयोगी बनता है जिससे एक अखडित समाजको स्वस्थ रूपसे खडा किया जा सकता है । क्योकि *"सामाजिक सगठनमे वह सामर्थ्य है जो अन्योके सामने स्वयके मस्तिष्कको गौरवान्वित करके उन्नतता बक्षता है"*-इस नीतियुक्त सहजोक्तिको उन्होने आत्मसात किया था । दूसरी ओर शिक्षाकी प्राप्तिसे दहेज-वरविक्रय और कन्याविक्रयकी विकृतियाँ-बालविवाह, ...क विवाहादि अनेक कुरूढियो-रिवाजो और अधविश्वासका निराकरण होनेकी सभावना प्रस्तुत की ।

समाजकी सगठितताके लिए उन्होने एक नया ही अभिगम अपनाया था । विचरते विचरते जहाँ कही गये, और कही फूट देखी कही मन-मुटावका अनुभव हुआ या कही सघर्ष पाया, तुरन्त ही दोनो पक्षोके दिलको तसल्ली प्रदान करनेवाली युक्तयुक्तियोसे समझाकर सगठित होनेके लिए उत्साहित किया- यथा-**"तत्पश्चात् आपश्रीका आगमन लुधियानामें हुआ । यहाँके संघमें रही फूट और मतभेदकी दरारको पाटकर महाराजश्रीने श्री कलिकुंड पार्श्वनाथजीके मंदिर निर्माणकी योजना कार्यान्वित करवायी ।"**[३४] इसके अतिरिक्त वे मानते थे कि सामाजिक सगठनका निर्वाह अनुशासन बद्ध-शिस्तपालनसे ही हो सकता है, क्योकि; अनुशासन-विहिन, विघटित या तितर-बितर, उच्छृखल, बहुत बडे समुदायका भी कोई महत्त्व नही । वह केवल जनसमूहकी भीडसे अधिक कुछ नही होता । शिस्तबद्ध सगठित व्यवस्थित समाज ही सामर्थ्यवान बन सकता है और विकासशीलता या प्रगतिशीलता प्राप्त कर सकता है-जैसे शिस्तबद्ध, अनुशास्ता-एक ही योद्धा विशाल जन समूहको नियत्रित कर सकता है । उन्होने जिस अनुशासनका आग्रह अपने समाजसे रखा है, स्वयको भी अनुशासनकी डोरसे बाँधा है । इसी अनुशासनके पालनके ...वश उन्होने ढूढक पथ त्याग करनेके पश्चात, अपने आप ही, स्वतत्र रूपसे सविङ्ग सामाचारी नही अपनायी, लेकिन श्री बुद्धि विजयजी म सदृश महात्माके चरणोमे स्वयको समर्पित किया, उनका शिष्यत्व अगीकृत किया । ज्ञानाध्ययनसे आगमाधारित पर्यवेक्षण करते हुए ढूढक पथकी भ-श्री महावीरके मार्गसे विपरितता ज्ञात होने पर भी जब तक श्री रत्नचद्रजी म सा से परामर्श करके उसकी संमूर्च्छिततताका निश्चय नही किया तब तक मूर्तिपूजादिकी उदघोषणा, प्ररूपणा और उपदेशसे परे रहे । अनुशासन, उनके स्वयके जीवनमे तो कदम-कदम पर अपनी सत्ता प्रदर्शित करता है उनके शिष्य समुदाय और भक्तगणसे भी उनकी यही अपेक्षा रहती थी । इसलिए अपने एक प्रशिष्यके अनुचित और शकास्पद आचरणको सुधारनेके लिए चेतावनी देने पर भी और उसका असर न होनेपर, उसके गुरु (स्वयके शिष्य) को जो पत्र लिखा उसका सारांश था-**"याद रखिये, अपने शिष्यको, सुधारिये, समझाइये और शुद्ध कीजिए, अन्यथा कल्याण नहीं है । 'मैं अमरसिह नहीं' । यदि यह दशा रहती है तो मैं इसे निकालकर समुदायसे बाहर करता हूँ ।"**[३५]

समाजोन्नतिके लिए उनकी समीक्षक दृष्टि द्वारा पर्यवेक्षित जिनेश्वर भगवत द्वारा प्ररूपित श्री जैनसघके श्रावक-श्राविका (गृहस्थ) के योग्य बारह व्रतको उन्होने अधिक उपयुक्त समझा था, जिनका जिक्र उन्होने अपनी *जैन तत्त्वादर्श, तत्त्व-निर्णय-प्रासाद, चिकागो प्रश्नोत्तर, जैनधर्म विषयक प्रश्नोत्तर* आदि रचनाओमे विस्तृत रूपसे, विभिन्न दृष्टिबिन्दुओसे विश्लेषित करके किया है ।-यथा-विशेष रूपमे समाजमें भय और

आतकके वातावरण और विषय कषायके निर्मूलन हेतु *प्राणातिपात विरमण (अहिंसा) व्रतको* सक्षम बताया तो **द्वितीय, तृतीय और चतुर्थ व्रत–*अमृषा, अस्तेय और अब्रह्म-त्यागव्रत*--के पालनसे व्यक्ति चारित्रनिष्ठ बनता है और अतत समाजके** नैतिक **मूल्योका उर्ध्वीकरण होते** हुए समाजमे स्नेह, **स्वार्थत्याग, और विश्वासका सुदर और स्वस्थ पर्यावरण** उपस्थित हो सकता **है** । साम्यवाद, साम्राज्यवाद, समाजवादादिके पचडोसे पल्ला **छुडानेके लिए और निर्धन-धनवानोके मध्यकी गहरी खाईको समतल करनेके लिए केवल** *अपरिग्रह या परिग्रह परिमाणव्रत*–सिद्धान्तका आचरण ही उपयुकत है ।

इसके अतिरिक्त गृहस्थका वारहवॉ व्रत '*अतिथि सविभाग*'को प्ररूपणा करते हुए साधर्मिक वात्सल्य और सुपात्र दानरूप 'अतिथि सविभाग'की महत्ताको दर्शाया है । साधर्मिक वात्सल्यकी भाव-ज्योत प्रज्वलित करनेवाला 'अतिथि सविभाग'व्रत श्रावकके लिए आवश्यक कर्तव्य रूप है । प्रतिदिन कर्तव्य 'षडावश्यक' (प्रतिक्रमण विधि)के समय समग्र दिनमे या रात्रिमे लगनेवाले दोषोके प्रायश्चित्त (आलोचना) करते वक्त श्रावक अपने इस कर्तव्यमे उदासीनता या बेपरवाहीको आत्मसाक्षीसे निदता है–*यथा*–

"साहुसु संविभागो, न कओ तव चरण करण जुत्तेसु ।
संते फासुअदाणे, तं निंदे तं च गरिहामि"[35]

शेष छ व्रतोके पालनसे उपरोक्त व्रतोकी पुष्टि होते हुए आत्माका कल्याणकारी-निरामयपथ पर प्रस्थान सभवित होता है । इन सभीका निरूपण करते समय आचार्य प्रवरश्रीके नयनपथमे, समाजमे दया, करुणा, सतोष-शील, सयम, परोपकार, आराधना/साधनादि उत्तम गुणोके आविर्भाव-सदभाव और स्थिरीकरणकी अपेक्षा ही झॉक रही थी । उनके अभिप्रायसे शिक्षा ग्रहणसे ही अज्ञानताको और स्वतत्र एव स्वस्थतापूर्ण विचारधारासे परपरित कुरूढियो-रिवाजो एव प्रथाओका निवारण हो सकता है ।

इसके अतिरिक्त इस मानवभवके साफल्यको सभवित बनानेवाले धर्म पुरुषार्थको निरूपित करते हुए आत्म-कल्याणकारी मोक्षमार्गके प्रमुख साधन रूप सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चरित्रकी आराधनाको प्रचलित करके समाज पर जो उपकार किया है, वह अवर्णनीय है । श्री सुशीलजीके शब्दोमे, **"जैनसंघके हित एवं श्रेयार्थ–अपने व्यक्तित्वको तिलांजलि देनेवाले–उससे तादात्म्य साधनेवाले आत्मारामजीम.सदृश विरला महापुरुष वर्तमान जैन समाजने संभवतः प्रथम और अंतिम बार ही देखा था । जैन समाजके प्रबल पुण्यने ही उन्हें आकर्षित किया था । मानों कोई देवदूत, दीन-हीन प्राणियोंका त्राता-जीवन विधाता-संत संघका जाज्वल्यमान नक्षत्र-जैन संघके गगनमें अचानक उदित हुआ हों, और अर्चना जीवनकार्य पूरा करके कर्तव्यके मेदानसे चूपचाप अस्ताचलकी ओटमें चला न गया हों ।"**[37] उनके साहित्यसे मानो स्वर उठते है-'*साहित्य जनताके सामाजिक और धार्मिक जीवनकी सेवाके लिए ही होता है ।*'-जो उन्होने वडी तटस्थतासे अपनी वाणी और वर्तनसे प्रमाणित कर दिखाया था ।

श्री आत्मानंदजी म.के साहित्यकी भाषाशैली:–भाषा परिचय--मनुष्य ज्ञानी है, बुद्धिमान है, चितनशील हैं, जिसके ज्ञान-बुद्धि एव चितनका ठोस आधार है *प्रथम* इन्द्रिय बोध, तदनतर होता है चितन और पश्चात मनन; जिसे प्रस्तुत करती है भाषा । भाषाके माध्यमसे ही जैन दर्शनके 'अनेकान्तवाद और स्याद्वाद' जैसे द्वन्द्वात्मक सघर्ष विदारक चितनके तात्त्विक समन्वय रूपको प्रस्तुत किया जा सका है । तदनुसार ससार स्थिर भी है और परिवर्तनशील भी । सासारिक प्रक्रियाओके समान भाषा भी कभी सापेक्ष स्थिरत्वके साथ सश्लिष्ट प्रवाहोके रूपमे प्रवहमान होती रहती है । अत भाषा जो समाजके विकासका साधन है, सामाजिक विकासके साथ स्वय भी विकासशील है, क्योकि **"भाषा ही विचारों और भावनाओंके आदान-प्रदानका माध्यम होती है"** ।[38] *यथा*-किसी एक समयमे *उच्चवर्गीय* सस्कृतिकी निधि तुल्य सस्कृत भाषा विचार-वहनका प्रबल माध्यम थी, लेकिन भारतमे जब नये सास्कृतिक और सामाजिक प्रवाहोके आलबनरूप नवीन भाषाओका प्रचलन हुआ, तब वे आविर्भूत भाषाये पहलेसे भी अधिक विशाल मानव समुदायको प्रभावित कर सकी, जिनमे शनै शनै चिंतनकी बारीकियोको अभिव्यक्त करनेकी क्षमता

भी सम्पन्न होने लगी । मानते है कि अग्रेजी विश्व भाषा है, फिरभी, किसी एक देशीय-एक भाषीय जातिकी अपेक्षा विश्वकी सर्व भाषाओमे सख्याकी अपेक्षा हिन्दीका स्थान अग्रीम ही माना जा सकता है- "इस विशाल हिन्दी भाषी जनसमूहका जातीय गठन, उसकी जातीय भाषाका विकास, उसका सांस्कृतिक अभ्युत्थानादि उसकी साहित्यिक प्रगति सारे देशकी प्रगतिकी महत्वपूर्ण कड़ी हे । समूची मानवताके संदर्भमें भी हिन्दी भाषा और साहित्यने जैसी प्रगति की है, वैसी संसारकी बहुत कम भाषा और उनके साहित्यने की होगी"। "

साहित्यमे भाषागत परिवेश-साहित्य पर सामाजिक और सास्कृतिक परिवेशका जैसा प्रभाव और महत्त्व स्वीकार किया जाता है, भाषागत परिवेश भी इतना ही प्रभावक और महत्त्वपूर्ण होता है जिनकी अपनी निजी वैशिष्ट्यपूर्ण शैली निर्माणमे भी विशेष योगदान प्रदान करता है **(१) विविध बोलियोका प्रभाव-** विशाल हिन्दी भाषी प्रदेशमे बोली जानेवाली अनेक बोलियोमें बहुत श्रेष्ठ और लोकप्रिय साहित्य रचा गया है इनके अतिरिक्त सभी बोलियोका अपना लोकसाहित्य निधि भी अवश्य है, जो विविध जनपदोकी वैविध्यता और समृद्धता समन्वित किये हुए है । इन समृद्ध बोलियोके शब्द-सग्रह, सरचना और परस्पर अत्यधिक समानता हिन्दी भाषा को प्रभावित करती है । **(२) उर्दूसे समानता--** नाम, सर्वनाम, क्रियापदादि मूल शब्द, कारक, वाक्य सरचनादि व्याकरणीक रूपादिमे अत्यधिक समानता हिन्दी और उर्दूके शिष्ट साहित्यिक रूपोमे भी प्राप्त होती है । **(३) प्रादेशिक भाषाओंका प्रभाव--** भिन्न भिन्न प्रदेशोमे विभिन्न भाषासे प्रभावित हिन्दीके अनेक रूप विकसित हुए, यथा-कलकतिया, बम्बइया, पटनिया, वनारसी, पजाबी, राजस्थानी, मालवी, मेवाडी आदि ।(४) **संस्कृत भाषा प्रभाव--** स्वयकी विकासशील और सृजनात्मक क्षमता होनेसे हिन्दी भाषा द्वारा बोलचालकी भाषाके अधिक नैकट्यवान-स्वीकृत साहित्य महत्त्वधारी सस्कृत भाषा रूपोके आधार भी स्वजाति प्रकृत्यानुसार ग्रहण किया गया है ।(५) **अंग्रेजी भाषा प्रभाव-** इन सबके अतिरिक्त हिन्दी भाषा पर अग्रेजीका प्रभाव-जिसे तत्कालीन भाषा प्रवृत्ति पर प्राय नगण्य ही माना गया है-यथा-कुछ ऐसे शब्द ही प्रयुक्त हुए जिनके लिए हिन्दीमे शब्द ही न हो, जैसे-कॉलेज, कलक्टर, नोट, रेल, स्टेशन, मोटर, फूट-इंच इत्यादि इनके अतिरिक्त अन्य प्रयोगमे अग्रेजीकी बदौलत सस्कृत-प्राकृत तत्त्वे पर ही आधार रखा गया या। कुछ अग्रेजी शिक्षा प्राप्त विद्वान अवश्य विद्वत्ता प्रदर्शन-हेतु अग्रेजी प्रयोग कर लेते थे प्राय यही प्रवृत्ति दिन-प्रतिदिन वृद्धिगत होते होते वर्तमानमे सीमातीत हो रही है ।। लेकिन तत्कालीन समाजमे उसे प्रशसनीय नही माना जाता था।

तत्कालीन हिन्दी भाषा-खडीबोलीकी प्रधानता--हिन्दी भाषाका प्रारम्भ तो चौदहवी शतीसे माना जाता है, लेकिन उसका अपभ्रश मुक्त-शुद्ध स्वरूप ई स १८००के आसपास ही विशेष रूपसे दृग्गोचर होता है, जिनमे लल्लुलालजीके 'प्रेमसागर' और 'राजनीति' सदल मिश्रके 'चन्द्रावती', मुशी सदासुखलालजी नियाजके 'सुखसागर' और सैयद इन्शा अल्लाखाकी 'राजा केतकीकी कहानी' आदिका योगदान आधुनिक गद्य साहित्यके प्रारम्भक या जनक रूपमे माना जा सकता है । हिन्दी साहित्यमे आधुनिक कालके आविर्भाव रूप, भारतेन्दु युगके पूर्व उन हिन्दी लेखको और उनके साहित्यके सवध मे श्री रामचन्द्र शुक्लजीका अभिप्राय है- **"मुंशी सदासुखलालजीकी भाषा साधु होते हुए भी पंडिताऊपन लिए थी, लल्लूलालमे ब्रजभाषापन और सदल मिश्रमे पूरबीपन था । राजा शिवप्रसादजीका उर्दूपन शब्दोंसे लेकर वाक्य विन्यास तकमें घुसा था। राजा लक्ष्मणसिहकी भाषा विशुद्ध और मधुर तो अवश्य थी, पर आगरेकी बोलचालका पुट उसमें कम न था। भाषाका निखरा हुआ शिष्ट सामान्य रूप भारतेंदुकी कलाके साथ** ही प्रगट हुआ ।"" यह भी कहा जा सकता है, कि हिन्दी साहित्यके विकासमे इन सभी साहित्यकारोके साथ ईसाई मिशनरीयोका योगदान भी नजर अदाज नही किया जा सकता यद्यपि इनका एकमात्र उद्देश्य ईसाई-धर्म-प्रचार ही था । फोर्ट विलियम कॉलेजकी स्थापनासे भी हिन्दीकी उन्नतिमे यथासभव सहायता मिली

भारतीय धर्म और दर्शन, सभ्यता और संस्कृति, आचार-विचार और व्यवहारादिके रक्षणार्थ एवं विदेशीय कुसस्कारके प्रभावसे बचाव रूप होनेवाले धार्मिक और सामाजिक आंदोलनोके उपक्रमके कारण

उनके सूत्रधार नेतागण या धर्म गुरुओं द्वारा जो विचारधाराएं चिन्तन प्रवाह बहाया गया उससे हिन्दी भाषाके गद्यको वैविध्यतापूर्ण, सुचारु रूपसे सिंचन मिला, जिनमे विशेष रूपसे उल्लेखनीय इस युगके प्रवर्तक श्री भारतेंद हरिश्चद्रजीके साथसाथ 'प्रेमघन', प्रतापनारायण मिश्र, अम्बिकादत्त व्यास, श्री दयानदजी, राजा शिवप्रसाद 'सितारे हिंद', नवीनचद्र रोय 'पजाबी', श्रद्धानद फिल्लोरी आदि माने जाते हैं । इस प्रकार हम देख सकते है कि हिन्दीके विकासमे भौगोलिक (क्षेत्रिय), राजनैतिक और सामाजिक एव धार्मिक परिबलोके प्रभाव महत्त्वपूर्ण बने हुए है । इन्ही प्रभावोंके अतर्गत साहित्यिक भाषाकी शैलियाँ निश्चित हो सकती हैं । यहाँ शैलीका अभीष्टार्थ है- विचारो एव भावनाओकी साहित्यिक विन्यास प्रविधि जिसे निम्नाकित प्रकारोमे वर्गीकृत किया जा सकता है (१) भाषा प्रकाराधारित (२) ... प्रविधि (३) गुणगत

आचार्य प्रवरश्रीके साहित्यमे भाषा शैली वैविध्य--- *(अन्य भाषाओंकी झलक)* - श्री आत्मानदजी म सा साहित्यकारसे पूर्व धार्मिक नेता थे और उससे भी पूर्व वे आत्मार्थी साधु थे-भगवद भक्त थे । अत उनके साहित्यमे विविध शैलियोके ...त्यका सगुफन सुदर वल्लरीके सदृश दृष्टिगत होता है, जिनमे प्रमुख रूपसे भाषा प्रकाराधारित सधुक्कडी सस्कृतनिष्ठ एव अन्य बोलियोसे प्रभावित तथा गुणगत-उपदेशात्मक, विवरणात्मक, प्रतिपादनात्मक, विश्लेषणात्मक, अनुवादात्मक, खडनात्मक, सरल-मधुर-रमणीयता लिए प्रसादात्मकादि शैलियोके प्रयोगोका विहगावलोकन करवाया जा रहा है।

भाषा प्रकाराधारित- श्री आत्मानदजी म सा जैन साधु होनेके नाते जैन साध्वाचारानुसार परिभ्रमणशील जीवन व्यतीत करते थे, परिणामत आपकी वाणीमे खडी बोलीकी प्रधानता होने पर भी अनेक बोलियोका प्रभाव झलकना सहज ही है । अत उनकी भाषा अनेक बोलियोसे मिश्र सधुक्कडी भाषा सदृश एव तत्कालीन धर्म प्रचारको और सामाजिक नेताओके समरूप शैलीयुक्त, परिमार्जित होती जा रही, साहित्यके स्वरूपके स्थिरत्व हेतु प्रयत्नशील खडीबोली थी । **"पूरानी हिन्दीमें बहुतसे रूप, बहुतसे प्रयोग, आपसमें टकरा रहे हैं और भाषा भागीरथीमें बहते-टकराते अपना रूप संवारते जाते हैं ।"**[??] जिस पर ब्रज-अवधि, राजस्थानी-गुजराती-पजाबी आदि भाषाओके प्रभाव स्पष्ट ही परिलक्षित होते हैं । श्री आत्मानन्दजी म सा सस्कृतके प्रखर विद्वान होनेसे भाषाके साहित्यिक रूप गठनमे बोलचालकी भाषाके समीपस्थ एव साहित्यिक स्तर योग्य सस्कृत भाषा रूपोके खुलकर प्रयोग प्राप्त होते है । इसके अतिरिक्त वे स्वय पजाबी होनेसे उनके साहित्यमे पजाबी प्रयोगोकी बहुलता और कभी कभी उर्दूपनका प्रभाव भी अवश्य प्राप्त होता है। निष्कर्ष रूपमे हम यह कह सकते है कि उनकी रचनाओमे पजाबीपन लिए हुए, ब्रज-अवधि-राजस्थानी-गुजरातीके प्रभावयुक्त प्राचीन हिन्दीके सभी लक्षण दृश्यमान होते है जो तत्कालीन सवरती, सजती परिमार्जित होती खडी बोलीमे हमे प्राप्त होते हैं । यथा—

क्रिया रूप- (१) **भया, भये, भयी के साथ हुआ, हुई आदि अर्वाचीन प्रयोगोंकी बहुलता (२) 'न'के स्थानमे 'ण'कार प्रयोग (३) सुनाय, बहाय, पिलाय, धराय, बसाय, जिमायके साथमें सुनाकर, बहाकर, पिलाकर, बसाकर आदिके प्रयोग (४) गावत, आवत, जावत, सोवतके साथ गाना, आना, जाना, सोना आदिके प्रयोग, (५) देवे, होवे आदिके साथ दें, हों आदिके प्रयोग (६) आवें, जावें, गावे, खावें के साथ नूतन आयें, जायें, गायें, खायें आदिके प्रयोग, (७) कर, धर, देख आदिके साथ नूतन प्रयोग करके, धरके, देखके, (८) दीजो, लीजो, कीजो आदिके साथ नूतन प्रयोग दीजिए, लीजिए, कीजिए, (९) धाये के साथ दौड़के-शब्द प्रयोग, (१०) 'आनके'-के साथ 'आकर' के शब्द प्रयोग, (११) घसें-घसके के साथ घुसे, घुसके आदि रूप (१२) सज्ञा रूपोंमे बननेवाले क्रिया रूपोंका प्रयोग—बखानना, स्नपन करना, कबूलना, निस्तारना, निषेधना, मकल्पना आदि, (१३) पद्यमें ब्रजभाषाके विशिष्ट प्रयोग निरखत, खेलावत, चितवत, बरनत, उपजत आदि.**

अव्यय रूप- **कित, कहु, कछुक, कितेक, केतई, कबहु, दुक,** सेती, नई, **ताई,** एता, **सोंही (सम्मुख), बिन, एता, जौं लौं...... तौं लौ, जद-तद, जहाँ-तहाँ, जिन-तिन, जैसे-तैसे अरु-औ (और), नाल आदि....**

सर्वनाम रूप-- **उसके, उससे, उन्होंसें, उन्होंके, उनोंने, जिस्को, जिस्से, तिनसे, तिसके, तितने, तिन्होंने, तिनमें,**

तिसका, तिसकाल, मनु, मन, नन, मुझं, तुझं, आदि;

बहुवचनमे पजाबीके आकारान्त क्रियापद एव सज्ञाओके रूप- **करतियां, करनवालियां, जनातियां, होतियां, जातियां, लकीयां, किताबां,** गुरां, **बातां, गल्लां, लोकां,** वाणीयां, **बत्तीसीयां, धर्मां** आदि;

अब उपरोक्त प्रयोगोंके श्री आत्मानंदजी म.के साहित्यमें-वाक्यप्रयोग रूपके कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं-

"तद पीछे गुरु वासां (वासक्षेप)को सूरिमंत्रसे अभिमंत्रके;" "चरम जिनकी स्तुतिवालियां होवें तिनको वर्द्धमान स्तुति कहते हैं।"; "शुभ प्रकृतियों भी अस्मदादिकोंमें मोह सहकृत ही अपने कार्यको करती देखनेमें आती हैं"; "आद्य पक्ष तो है नही,", "अथ गुण लिखते है ।", "स्वभावसे अन्यथा जो होवें सो विभाव", "तिन तिन पर्यायोंको प्राप्त होता है वा छोड़ता है, अथवा अपने पर्यायों करके ही प्राप्त होवे वा छूटे अथवा द्रुसत्ता, तिसका ही अवयव वा विकार सो द्रव्य ।"; "जब बंध मोक्षका अभाव होवेगा ।"; "समय-समयप्रति पर-अपर पर्यायोमे गमन करना", "अब हमको जो कछुक कहना है ।", "श्री परमगुरु कहते हैं, भो जैन ! तूने अतिमूढ़ने यह क्या कहा ?"; "तद पीछे कुमारिल भट्टके पास वार्तिक करवानेकी इच्छा उत्पन्न भई ।"; "कालमें भी यह वक्ष्यमाण हानी होवेगी सो ही बतावे हैं । समय समयमें अनंते अनंते द्रव्य पर्यायोंके वर्णादि शब्दसे वर्ण, रस, गंध, स्पर्श जे जे शुभ-शुभतर है उनोंकी हानी होवेगी, परंतु अहोरात्र तावन्मात्र ही रहेगा..... इसवास्ते असंख्य काल पहिले वड़ी अवगाहनाका होना संभवे है ।"; "उन्होंने जो अर्थ करा है सो अपनी बुद्धिसे करा है, न तु स्वबुद्धि उत्प्रेक्षित । जेकर स्वबुद्धि कल्पनासे अर्थ करें जावे तब तो असली सर्व सच्चे अर्थ व्यवच्छेद हो जावेंगें"; "जिस प्रतिमाका, स्थान-स्थित, हीं का स्नपन कराया जाये तिसके वास्ते सर्व कुछ तहां ही करना"; "इस वृत्तके सर्व पुष्पांजलियोंके बिचाले धूपोत्क्षेप करना"; "मारणे योग्य नहीं है तिनको नहीं मारणा"; "गृह्य गुरुके पगोंमे पड़े"; "एकदा प्रस्तावे कृष्णजी तलाबके कांठे ऊपर तप तपते थे । तहाँ कोई तापसनी स्नान करती थी.....तापसनीने तैसा जानकर शाप दे के लोचन सरोग करा"; "जिस तिस मतके शास्त्रमें, जिसतिस प्रकार करके, जिस तिस नाम करके, जो तूं है सो ही तूं है परं यदि जेकर दूर हो गये हैं द्वेष, राग, मोह, मलिनतादि दूषण तो, सर्व शास्त्रोंमे तूं जिस नामसे प्रसिद्ध है, सो सर्व जगे तूं एक ही है, इस वास्ते हे भगवन ! तेरे तांई नमस्कार होवे ।"; "जो आपही कामाग्निके कुंडमें प्रज्वलित हो रहा है, तिसमें कभी ईश्वरता नहीं हो सकती, इस हेतुसे, जो राग रूप(स्त्री) चिह्न करके संयुक्त है सो देव नहीं हो सक्ता है । पुनः जो द्वेष चिह्न(शस्त्र) करके संयुक्त है, वो भी देव नहीं हो सक्ता है ।" "और वेदोंकी उत्पत्ति जैनमतवाले जैसें मानते है तैसें 'जैन तत्त्वादर्श' नामक पुस्तकसे,.....ब्राह्मण लोक जिस तरें वेदकी संहिता उत्पन्न भई मानते है, तैसें महीधर कृत यजुर्वेद भाष्य और अज्ञान तिमिर भास्कर ग्रंथसे जान लेनी.....यह किंचित्मात्र ग्रंथ समीक्षा विषयक लिखा ।"; "दुष्यंतका लड़का भरते गंगाका तीरपर पंचावन अश्वमेघ किया है । ए भरतका महाकर्म दूसरा किने बी नहीं किया ।"; "ऐसी ऐसी कथा लिख छोड़ी है, तिससे कर्मका प्रयोजन बांधा है ।", "तिनको लोगोंने बहुत धिक्कार दिया । तिससे वेदोंकी पुस्तक ढांक छोडनेकी जरूरत हो गई, और कितनीक वेदोक्त विधियाँ त्याग दीनीं ।"; "अनेक तरेंकी कथा, प्रशंसारूप लिखी है ।"; "कहां तक लिखें, बुद्धि जुवाब नहीं देती-एह दयानंदजीकी वेदोक्त मुक्तिका हाल है। और गोतमोक्त मुक्तिमें पूर्वोक्त दूषण नहीं, क्योंकि गौतमजी तो आत्माको सर्व व्यापी मानते हैं, इसवास्ते 'आणा' और 'जाणा' किते भी नही ।", "तिस प्रकृति सेंती बुद्धि उत्पन्न होती है ।", "यह सत्त्वादिक, परस्परोपकारी तीन गुणो करके सर्व जगत व्याप्त है ।"; "उसकू परलोकमें कष्ट परपरा पावणी बहुत सुलभ है, औ जो सुकृत करेंगे उनको भवांतरमे सुख योवनादि पावणा सुलभ है।", "अयोगी अंत समयमे जोनसी प्रकृति क्षय करके जो कुछ करता है,"; "आत्माके सयोगसे प्रगट भया है, अत रागादिकोंका प्रकाश परिणाम शरीरस्थ होनेसे, खद्योत देह परिणामवत् तथा आत्मा सयोगपूर्वक शरीरस्थ होनेसे ज्वरोष्मवत्, अगारादिकोंमें भी उष्णता है ।"

सरचना प्रविधि – उनकी भाषामे वर्तमानमे प्रयुक्त की जानेवाली परिष्कृत हिन्दीसे थोडीसी विषमता होने परभी विशिष्ट रूपमें समानता भी परिलक्षित होती हैं । अत यह स्पष्ट हैं कि उनके साहित्यमें कुछ उदाहरण

अवश्य प्राचीन हिन्दीके प्राप्त होते हैं फिरभी, उनकी भाषा तत्कालीन साहित्यकी समकक्ष भाषागत परिनिष्ठित सभी साहित्यिक वृत्ति-प्रवृत्तियों लिए हुए हैं । *तत्सम्बन्धी जैन तत्त्वादर्श पूर्वार्धके प्रासंगिक वक्तव्य' मे डॉ बनारसीदासजीने* आचार्य प्रवरश्रीकी भाषा परत्वे अपना अभिमत प्रस्तुत करते हुए लिखा है कि-**"प्रस्तुत ग्रन्थकी भाषाके साथ यदि निश्चलदासजीके 'विचार सागर', और 'वृत्ति प्रभाकर' की भाषाको मिलान करें तो बहुत समानता नज़र आयेगी.....भाषा सौष्ठवमें भी कोई क्षतिनज़र नहीं आती.....श्री चिद्घनानंदजी कृत 'भगवद्गीता' और 'आत्मपुराण'की रचना शैली देखें । इनमें वाक्य रचना और विषय निरूपणमें एक ही प्रकारकी पद्धतिका अनुसरण किया गया है।"**

गुणगत - उपदेशात्मक शैली श्री आत्मानदजी म साधु थे-धार्मिक ... अत जीवनोत्थान (आत्मकल्याण) धर्मोन्नति और समाजोत्कर्षके लिए उनके दिलमे असीम तमन्नाये हिलोरे ले रही थी, जिसके लिए उन्होंने माध्यम बनाया था अपनी लेखिनीको और वाणी-विलास रूप प्रवचनोके यही कारण है कि उनके साहित्यमे हमे स्थान-स्थान पर उपदेश प्रसाद प्राप्त होता रहता है । कुछ उदाहरण प्रस्तुत करते है- श्री अरिहत देवाधिदेवकी अगपूजानतर, अग्रपूजा-भक्ति–भावसे और द्रव्यसे श्रावकको, एव भावसे साधुको करनेका विधान करते हुए उपदेश देते है- **"गीत-नृत्य, जो अग्रपूजामें कहे है, सो भावपूजामें भी बन सकते है । सो गीत, नृत्य, मुख्यवृत्ति करिके तो श्रावक आप करें, जैसे निशीथचूर्णिमें उदायन राजाकी राणी प्रभावतीका कथन है । पूजा करणेके अवसरमें श्री अर्हतकी तीन अवस्थाकी कल्पना करें-स्नान करती बखत छद्मस्थ अवस्थाकी कल्पना करें, तथा आठ प्रातिहार्यकी शोभा करतां केवली अवस्थाकी कल्पना करें, तथा पर्यंकासन-कायोत्सर्ग देखके सिद्धावस्थाकी कल्पना करें । इसमें छद्मस्थावस्था तीन तरेकी कल्पे, एक जन्मावस्था, दूसरी राज्यावस्था तीसरी साधुपणेकी अवस्था। तहां स्नानकी बखत जन्म अवस्था कल्पे, माला, फूल, आभरण पहिराने वखत राज्यावस्था कल्पे, तथा दाढी-मूछ-शिरके बालोंके न होनेसे साधु अवस्था विचारें-इनमें साधु, केवली-मोक्षावस्थाको वंदन करे ।"**

व्यापार शुद्धि आदिकी प्ररूपणा करते हुए लिखते हैं, कि, जो अर्थ चिंताका स्वरूप निर्दिष्ट किया है, वह अनुवाद रूप है क्योंकि धनोपार्जनकी चिंता इस संसारमे स्वत सिद्ध है । वहाँ शास्त्रकारका उपदेश अनावश्यक है, फिर भी जो निरूपण किया है वह विधेयात्मक है क्योंकि शास्त्रोपदेश केवल अप्राप्त अर्थ (मोक्ष)की प्राप्तिके लिए होता है, शेष सर्व अनुवाद रूप हैं । अत आजिविकाके सात प्रकारोकी चर्चा करनेके पश्चात् श्रावकोकी मुख्यवृत्तिका विवेचन करते हुए प्रेरणा करते है- **"जहाँ धर्म सामग्री होवे, तिस क्षेत्रमे व्यापार करें.....कदाचित् अपने पास धन हानि हो जाये-धनकी अप्राप्ति हो जाये तो भी खेद न करे, क्योंकि खेदका न करणां, यही लक्ष्मीका मूलकारण है । बहुत धन जाता रहे, तो भी धर्म करणेमें आलस न करें, क्योंकि संपदा अरु आपत् बडे आदमीओंको ही होती है, सदा एकसरिखे दिन किसीके नहीं जाते हैं । पूर्व जन्म-जन्मांतरके पुण्यपापोदयसे संपदा विपदा होती है, इस वास्ते धैर्यका आलंबन श्रेष्ठ है। यदा अनेक उपाय करनेसे भी दरिद्र दूर न होवे, तदा किसी भाग्यवानका आधार लेवें । जेकर बहुता धन हो जावे तदा अभिमान न करें, क्योंकि लक्ष्मीके साथ पांच वस्तु होती है- निर्दयत्व, अहंकार, तृष्णा, कठोरवाणी और वेश्या नट-विटादि नीच पात्रोंकी वल्लभता–इस वास्ते बहुत धन हो जावे तो इन पांचोको अवकाश न देवें।"**

विवरणात्मक शैली- चौदह गुणस्थानकके विवरणानन्तर निःकर्मा (सर्व कर्मरहित) आत्मा उसी समय (जिस समय सर्वकर्म क्षय हुए उसी एक ही समयमे) किस तरह लोकातमे पहुँच जाता है, इस आशकाका प्रत्युत्तर देते हुए दृष्टान्तपूर्वक आत्माका ऊर्ध्वगमन विवरित करते है-**"सिद्ध-कर्मरहित-की ऊर्ध्वगति होती है,'कस्मात्' किस हेतुसे ?....जैसे कुंभकारका चक्र पूर्वप्रयोगसे फिरता है, तैसे आत्माकी पूर्व प्रयोगसे ऊर्ध्वगति होती है । जैसे माटीके लेपसे रहित होने करके तूंबेकी जलमें ऊर्ध्वगति होती है, तैसे ही आत्माकी ऊर्ध्वगति होती है । जैसे एरंड फल बीजादि बंधनोंसे छूटा हुआ ऊर्ध्वगतिगामी होता है, तैसे ही कर्मबंधके विच्छेद होनेसे सिद्धकी भी ऊर्ध्वगति होती है । तथा जैसे अग्निका ऊर्ध्व ज्वलन स्वभाव है तैसे ही आत्माका भी ऊर्ध्वगमन स्वभाव है ।"**

प्रतिपादनात्मक शैली– इस संसारको **सर्वश्रेष्ठ सारभूत**, निःसीम और आत्यंतिक सुखमय, स्वरूपावस्थान रूप **मोक्ष प्राप्तिके मार्ग, स्थानोंके लिए प्रयत्न करने हेतु** मनुष्य उस समय आकर्षित होता है । जब उसे मोक्षका स्वरूप समझ लेनेके कारण उसकी उपादेयता सुहाती है, उसके लिए उसके दिलमें एक ललक पैदा होती है । अतः सर्वज्ञ प्ररूपित मोक्षकी उपादेयताका प्रतिपादन करते हुए आ. ? भगवत लिखते हैं- **"सर्व वादियोंकी कही मोक्ष ठीक नहीं, कारण कि (१) जब अत्यन्त अभावरूप मोक्ष होवे तब तो आत्मा ही का अभाव हो गया, तो फेर मोक्षफल किसको होवेगा ? ऐसा कौन है, जो आत्माके अत्यंताभाव होनेमें यत्न करें** ? (२) जो **ज्ञानाभावको** मोक्ष मानते है, सो भी **ठीक नही**, क्योंकि जब ज्ञान ही न रहा, तब तो **पाषण भी मोक्षरूप** हो गया, तो ऐसा कौन प्रज्ञावान है, जो अपणी आत्माको जड़-पाषाण तुल्य बनाना चाहे ? (३) जो **सर्वव्यापी आत्माको मोक्ष** मानते है-अर्थात् जब आत्माकी मोक्ष होती है, तब आत्मा **सर्वव्यापी मोक्षरूप हो जाती है । यह भी कहना प्रमाणानभिज्ञ पुरुषोंका है, क्योंकि** आत्मा **किसी प्रमाणसे भी सर्व लोकव्यापी सिद्ध नहीं हो सकती है । इसकी विशेष चर्चा देखनी होवे तदा 'स्याद्वाद रत्नाकरावतारिका' देख लेनी** (४) **जो मोक्ष** जाकर **फेर संसारमें जन्म लेनां, फेर मोक्ष होनां-यह तो मोक्ष भी काहेकी ? यह तो भांडोंका सांग हुआ । इस वास्ते** यह भी ठीक **नहीं** । (५) जो **मोक्षमें स्त्रियोंके भोग** मानते है, सो **विषयके लोलूपी है । तथा जो खरह ज्ञानीने मोक्ष कही है सो अप्रमाणिक है, किसी प्रमाणसे सिद्ध नहीं है । इस** वास्ते **अर्हत सर्वज्ञने मोक्ष कही है सो निर्दोष है और उपादेय है जो सत्‌रूप, ज्ञान-दर्शनरूप, असार संसारमें** सारभूत, **निस्सीम-आत्यंतिक सुख रूप, अनंत अतींद्रियानंद अनुभव स्थान, अप्रतिपाति, स्वस्वरूपावस्थानरूप है।"**[60]

अनुवादात्मक शैली– अनुवादका शब्दार्थ या लक्षणार्थ है- तरजूमा, भाषांतर और उसका ध्वन्यार्थ होगा- अनुसरण (अन्यके अनुसार वाणी-वर्तन) । आचार्य प्रवरश्रीके साहित्यमें दोनो अर्थ सार्थकता प्राप्त करते हैं। आपश्रीने अपने *तत्त्व निर्णय प्रासाद' ग्रन्थमें तृतीय, चतुर्थ, पंचम स्तंभमें श्री हरिभद्र सूरीश्वरजी म.सा.तथा श्री हेमचंद्राचार्यजी म.सा.के 'अयोग व्यवच्छेद द्वात्रिंशिका', 'महादेव स्तोत्र', और 'लोक तत्त्व निर्णय'के अनुवाद* प्रस्तुत किये हैं । इनके अतिरिक्त उनकी विचारधाराओ और प्ररूपणाओंके अनुरूप ही अनेक सैद्धान्तिक विषयोंको अपने साहित्यमें स्थान दिया है, जो जैन साहित्यके गौरवको अलंकृत करने योग्य बन पडा है ।

विश्लेषणात्मक शैली– विश्लेषण अर्थात् वियोजन- किसी भी पदार्थ या घटक अथवा विचारधाराको विघटित- पृथक् पृथक् करके उसके विभिन्न रूपोंको समझाना । आचार्य प्रवरश्रीने कुछ आगमिक तथ्यों एवं प्ररूपणाओंको समझनेमें सरल बनाने हेतु और याद करनेमें तथा याद रखनेमें सहज बनाने हेतु इस शैलीका उपयोग अपने ग्रन्थोंमें किया है । यथा-*'बृहत् नवतत्त्व संग्रह' ग्रन्थमें कर्मविज्ञान, चौदह गुणस्थानक, लेश्यादि* अनेक कठिन, **संश्लिष्ट** एवं सक्लिष्ट विषयोंको पृथक्करण करके तालिका स्वरूप बनाकर सरल रूपमें प्रस्तुत किया है । उसी प्रकार *'जैन तत्त्वादर्श' ग्रन्थमें वर्तमान चौबीसीके चौबीस तीर्थंकरोंके जीवन तथ्योंको* संक्षिप्तमें तालिका बनाकर इस तरह पेश किया है कि, याद रखनेके लिए तो आसान बन ही गया है लेकिन उनके परस्पर तुलनात्मक अध्ययनके लिए भी सुविधाजनक और सुगम हो गया है । इस तालिकाधारित संस्कारित तालिका पर्व प्रथममें प्रस्तुत की गई है । *'जैनधर्म विषयक प्रश्नोत्तर' ग्रन्थमें* **प्रश्न-५४ के प्रत्युत्तर रूप पैंतालीस आगमके पंचांगी स्वरूप-नाम**, श्लोक प्रमाण, **विषय निरूपणादि; प्रश्न-१५३ के** प्रत्युत्तर रूप चौदह **पूर्वकी** पद संख्या, विशालता एवं **विषय** निरूपणके स्वरूपको; एवं **प्रश्न-१५४ के प्रत्युत्तरमें** 'पंच परमेष्ठि'का इतर दर्शनोंमें स्वरूप, प्रश्न-१५९ के प्रत्युत्तरमें गुरुका स्वरूप और उनकी **योग्यायोग्यता** एवं **प्रश्न-१६० के प्रत्युत्तरमें विश्वके समस्त धर्मोका पांच वर्गोमें वर्गीकरण करके उसके स्वरूपको विभिन्न** तालिकाओंके माध्यमसे निरूपित करके, बालजीवों पर इतना महान् उपकार किया है कि उन विषयोंको समझना, याद रखना, तुलनात्मक अध्ययन करना एक ही दृष्टिमें एक ही समयमें संपूर्ण विषयको खोलकर रखनेमें अत्यन्त अनुकूलता हो गई है ।

भाषाकी सरलता– स्वभावत 'भिव्यजनाके प्रमुख माध्यम-तत्कालीन भाषा द्वारा ही श्री आत्मानदजी म सा ने **अपने अतरके भावोको प्रकट किया है । आपका लक्ष्य अपने अभिमतसे, धर्मभावनाओसे सामाजिक सुधारके स्वरूप आदिसे जन-जनको परिचित करना था, जिससे 'स्व'के साथ 'पर'के भी उपकारकी अभिलाषा सिद्ध हो । समाजोन्नतिमे सहयोग देनेमे समर्थ धार्मिक एव दार्शनिक सिद्धान्तोकी गूढता या दुरूहताको पाठकोके मस्तिष्कका शृगार बनाने हेतु, उन्होने उस दुरूहताको सरल भाषामे सस्कारित करके अपने ग्रन्थोमे निरूपित किया । उन ग्रथोके अवगाहक प्रत्येक स्तरके पाठकको प्रमुदित करनेकी क्षमता उनके ग्रन्थोकी हैं ।** विशेषत जो ग्रन्थ सामान्य जन एव जैन समाजकी अभिज्ञता हेतु रचे गये है- *जैन तत्त्वादर्श, तत्त्व निर्णय प्रासाद, अज्ञान तिमिर भास्कर, जैनधर्म विषयक प्रश्नोत्तरादिमे* उनकी भाषाकी सरलताका परिचय प्राप्त होता है । कही कही दार्शनिक विषयोकी गूढताके विश्लेषणमे, तद् विषयक पारिभाषिक शब्दोके कारण श्लिष्ट प्रयोग हुए है जो विषयानुरूप होनेसे यथोचित ही भासित होते है, जिससे भाषाकी सौम्यता और सप्रेषणीयतामे किसी भी प्रकारका अवरोध नजर नही आता है । परमात्माने अहिसा धर्मकी प्ररूपणा किस प्रकार की है, उसे स्पष्ट करते हुए आप फर्माते है- "**वेद हिसक शास्त्र है । (यज्ञमें) बिचारे बेगुनाह, अनाथ, अशरण, कंगाल, गरीब, कल्याणास्पद, ऐसे जीवोंको मारणा और मांसभक्षण करणा और उसे धर्म समझना** यह **मंद बुद्धियोका काम है.....करुणारस भरे, सत्यशील करके संयुक्त, निर्हिंसक, तत्त्वबोधक, सर्व जीवोंके हितकारक, पूर्वापर विरोध रहित, प्रमाण युक्ति सम्पन्न, अनेकान्त स्वरूप, 'स्यात्' पद करी लांछित, परमार्थ और लौकिक व्यवहारसे अविरुद्ध--इत्यादि अनेक गुणालंकृत भगवान् अर्हत परमेश्वरके वचन जो है, ये पूर्वोक्त लक्षण वेदोंमें नही है... जो कोई ब्राह्मणादि दयाधर्म मानते हैं, और प्ररूपते हैं, वे वेदोंके विरोधी है, क्योंकि वेदोंमे दयाधर्मकी मुशक भी नहीं है । जेकर वेदोंमें अहिंसक धर्मकी महिमा होती तो (शंकरस्वामी) सौगतको काहेको कहते, 'अहिसा कथं धर्मो भवितुमर्हति ?' अर्थात् अहिंसा कैसे धर्म हो सकता है, अपितु हिंसा ही धर्म हो सकता है ।"**[48]

मोक्षमार्ग और ससारका स्वरूप वर्णन करते हुए आपने किया हुआ जिनाधीशके वचनोका स्वरूप निरूपण इस प्रकार है- नवतत्त्वोके अति सक्षिप्त वर्णनके पश्चात आप लिखते है– "**इन पूर्वोक्त नव ही तत्त्वोंका स्याद्वाद शैलीसे शुद्ध श्रद्धान करना तिसका नाम सम्यक् दर्शन है इनका स्वरूप पूर्वोक्त रीतिसे जानना तिसका नाम सम्यक् ज्ञान है और सत्तरे भेदें संयमका पालना तिसका नाम सम्यक् चारित्र है- इन तीनोंका एकत्र समावेश होना, तिसका नाम मोक्षमार्ग है । जड और चैतन्यका जो प्रवाहसे मिलाप है सो संसार है । यह संसार प्रवाहसे अनादि अनंत है और पर्यायोंकी अपेक्षा क्षणविनश्वर है, इत्यादि वस्तुका जैसा स्वरूप था तैसा ही है जिनाधीश ! तैंने कथन करा है।"**[49]

भाषा माधुर्य– भाषाकी कर्णकटुता या कठोरता स्वभावत श्रोताको वाङ्मयसे विमुख बनानेका सामर्थ्य रखती है, जबकि भाषाका माधुर्य कृतिकारको लोकप्रियताका ताज उपलब्ध करवाता है । श्री आत्मानदजी म सा की प्राय सर्व कृतियोकी एकसे अधिक आवृत्तिका होना और इतर भाषाओमे अनुवादित होना ही उनकी लोकचाहनाको अभिव्यक्त करता है, जो उनके विनोदप्रिय मधुरतायुक्त व्यक्तित्वका परिणाम है । "**यद्यपि आपने गूढ, विवादग्रस्त, धार्मिक और दार्शनिक विषयोका अपने ग्रन्थोंमें प्रतिपादन किया है, तथापि भाषा पद्यके समान रमणीय है । आपकी हिन्दी भाषामें सरलता, मधुरता और प्रसादादि गुण स्थान-स्थान पर दृष्टिगोचर होते है ।"**[50] *इसको प्रतिपादित करता है श्री दयानदजी के किये गये आक्षेप–'जैनियोमे विद्या नहीं है न कोई ज्ञानी है'- का यथोचित प्रत्युत्तर । आप लिखते है-*"**यह लिखना ऐसा है जैसा मारवाडमें पद्मिनी स्त्रीका होना । जैसे मारवाडमें एक काली, कुदर्शनी, दतूरा, चिपटी नासिका बिभत्स रूपवाली किसी स्त्रीको कोई पूछे कि तुम्हारे देशमें पद्मिनी स्त्रीके बारेमें सुना है, तिसको तुम जानती हो ? तब वो दीर्घ उच्छ्वास लेकर कहती है, मेरे सिवाय अन्य पद्मिनी स्त्री कोई नहीं । मुझको बहुत शोक (खेद) है कि मेरे समान कोई पद्मिनी न हुई है, न होगी। मेरे पीछे पद्मिनी स्त्री व्यवच्छेद हो जावेगी । भला, यह बात कोई सुज्ञ जन मान लेवेगा कि, जैनमतमें वा अन्य मतमे कोई भी विद्वान नहीं हुआ है ?"**[51] किस प्रकार हलके व्यग्यको कसते हुए

भ्रामक-मिथ्या प्ररूपणाका मधुरतासे प्रतिकार रूप खडन किया है, जो कुछ रमूजके साथ पाठकको सत्यकी प्रतीति करवाता है ।

भ.श्रीमहावीरजीकी प्ररूपणासे विपरित सिद्धान्ताधारित जैनमार्गकी अनेक शाखा-प्रशाखाओका विवेचन करते हुए भव्य प्राणियोको मनुष्य जन्मकी दुर्लभता चिह्नित करते हुए उसकी उपयुक्तताको मधुर भाषामे व्यक्त करके प्रेरणा करते हैं– **"ऐसे कुमतियोंके मतोंके आग्रहसे दूर होकर हेयोपादेयादि पदार्थ समूहके परिज्ञानमें जीवको प्रविण होना चाहिए, और जन्म, जरा, मरण, रोग, शोकादिकों करके पीडितको स्वर्ग-मोक्षादि सुख संपदके सपादन करणेमे अबध कारण ऐसा धर्मरत्न अगीकार करना उचित है, क्योंकि इस अनादि अनंत ससार समुद्रमें अतिशय करके भ्रमण करनेवाले जीवोंको प्रथम तो मनुष्य जन्म, आर्यदेश, उत्तम कुल, जाति-स्वरूप, आयु पंचेन्द्रियादि सामग्री सयुक्त पावणा दुर्लभ है । तहां भी मनुष्यपणेमे अनर्थका हरणहार-सत्-धर्म पावणा अति दुर्लभ है, जैसे पुण्यहीन पुरुषको चितामणी रत्न मिलना दुर्लभ है ।"**

इस प्रकारके मधु-रस-सिकरोंकी वर्षा उनकी कृतियोमे स्थान-स्थान पर प्राप्त होती है । विशेषत गभीर और कठिन विषयोको सरल और सहज-लोकभोग्य बनाने हेतु उन्होने इस मधुर भाषाका प्रयोग किया है जो उनकी औपपातिक बुद्धि, सप्रेषणीय कौशल और विनोदप्रिय प्रकृतिके अनुरूप ही है ।

प्रथम जैन हिन्दी लेखकः— हिन्दी भाषा साहित्यके आदिकालसेजैन साहित्यकी श्री वृद्धि पर्याप्त प्रमाणमे उपलब्ध होती है, लेकिन आदिकालीन और उसके परवर्तीकालीन अन्य साहित्यकार सदृश जैन कृतिकारोंकी प्रवृत्ति भी पद्यकी ओर ही विशेष थी–जो साहित्यको कठस्थ रखनेकी जैन सस्कृतिकी प्रणालिकाके लिए अधिक उपयुक्त और सरल थी । मध्यकाल तक आते आते हिन्दी परिवारकी भाषाओमे गद्य साहित्यका उन्मेष सर्व प्रथम राजस्थानीमे–तेरहवी शताब्दीमे, ब्रज या दक्खिनीमे-चौदहवी या सोलहवी शताब्दीमे, खडी बोलीमे-सत्रहवी शताब्दीमे, अवधि और बनारसीमे-अठारवी शताब्दीमे दृष्टिगोचर होता है–जिनमे साहित्यिक सौष्ठवकी न्यूनता और गभीरार्थवाले-चमत्कार रहित शब्द योजनाकी बहुलता युक्त, तुकबदी और काव्यात्मक शैली प्रधान ललित या अललित, मौलिक या अमौलिक, धार्मिक या व्यावहारिक गद्य रचा गया, जो विशेषत जैनधर्म शिक्षा प्रदानके महदुद्देश्यको समाहित किये हुए था ।

तत्कालीन साहित्य रूपोमे ऐतिहासिक इतिवृत्तोको उजागर करनेवाली वशावली, गुर्वावली, पट्टावली, पीढीयावली, प्रश्नोत्तर, वचनामृत, पत्रादि अललित-मौलिक-गद्य साहित्य रूप, एव कथा, बात (वार्ता) वर्णन चरित्र, वचनिकादि ललित-मौलिक-गद्य साहित्य रूप, तथा अमौलिक गद्य रूपोमे व्याख्यात्मक या अनूदित गद्य–जैसे बालावबोध, वृत्ति, अवचूरि, टबा, तिलक, वार्तिक, टिप्पण, टीका, तर्जुमा, तफसीर आदि शीर्षकान्तर्गत साहित्य प्राप्त होता है । जिनके प्रतिपादित विषय होते थे–धर्म दर्शन, अध्यात्म, चिकित्सा, ज्योतिष भूगोल, खगोल, शकुनशास्त्र व्याकरण, गणित आदि । यह स्पष्ट ही है कि मध्यकालीन अमौलिक वाङ्मयकी बनिस्वत मौलिक साहित्यकी विशालता सिमित ही है जिसकी परवरिश प्रधानत धार्मिक एव सास्कृतिक आचलमे हुई । इसके अतिरिक्त भक्तिकालीन, धार्मिक साहित्यकी अनेक सस्कृत-प्राकृत रचनाओका गुजराती-मारवाडी आदि भाषा रूपोमे बालावबोध, टबा, वृत्ति अवचूरि आदि अमौलिक व्याख्या साहित्य उपलब्ध होता है ।

इस प्रकार मध्यकालीन पारलौकिकतासे अत्यन्त आच्छन्न और मानवजीवनके इहलौकिक परिवेशसे किनारा करनेवाले आध्यात्मिक या अन्य साहित्यकारोके प्रत्युत अर्वाचीनकालीन साहित्यकारोने परिवर्तित युगचेतनाके नूतन इहलौकिक पर्यावरणमे अधिक सतर्क बनकर सुधार-परिष्कार युक्त नूतन विचार प्रवाहके बल पर धार्मिक सास्कृतिक और साहित्यिक चेतनधाराओको पुनराख्यायित करके आधुनिक कालमे धर्म-दर्शन-साहित्य कलादिके प्रति नये अभिगमका आविर्भाव किया ; परिणामत उन्नीसवी शतीके उत्तरार्धमे उस नूतन आविर्भावके साथ आधुनिक साहित्य चेतना वृहत्तर रूपमे मानवीय-भौतिक-सुखदुखके साथ विशेष रूपसे जुडी । इस अर्वाचीन विकासशील ऐतिहासिक प्रक्रियासे प्रभावित साहित्यिक विधा एव भाषा भी परिवर्तित होते होते परिष्कृत

खडीबोलाम ... रूपमे निखार धारण करने लगी थी । सोलहवी शती... श्राहीरसूरि म सा सत्रहवी शती... **श्रीसकलचद्रजी म , श्रीसमयसुदरजी म , श्रीजिनराज सूरिजी, श्रीप्रीति** विमलादि एव **अठारहवी शतीके महोपाध्याय श्रीयशोविजयजी म , श्रीचिदानंदजी म , अध्यात्म योगी श्रीआनदघनजी म , श्रीज्ञानविमल सूरिजी** आदि द्वारा **अध्यात्म रससे लबालब, आत्म कल्याणकारी, धार्मिक क्रियानुष्ठान और दार्शनिक-सैद्धान्तिक प्ररूपणाकी** वाहक, **गुजराती भाषासे प्रभावित,** बजभाषा **मिश्रित भाषामे निहित** पद्य **साहित्यका स्थान** आधुनिक कालमे सविज्ञ **शाखीय** आद्याचार्य **श्री** आत्मानदजी म सा के **समाजोत्थानसे** युक्त आध्यात्मिक **सिद्धान्तादि** प्ररूपक **खडीबोलीका** गद्य साहित्य ग्रहण करने लगा ।

जैनधर्म-सद्धर्म-प्रभावक, प्रचारक प्रसारक जिनशासनके ... महान युगप्रधान श्री आत्मानदजी म सा की अतर वीणाकी झकृत तारोने एक ही सात्त्विक ... जैन समाजोपकार जन जनके लिए कल्याणकारी एव जीवमात्रके मगलमय उत्थान हेतु एक मात्र ... या सर्वौषधिके सिद्ध उपचार स्वरूप श्री जिनेश्वरकी वाणी, जैन दार्शनिक सिद्धान्त और श्री अरिहत द्वारा प्रकाशित सत-शुद्ध एव शाश्वत धर्मकी प्ररूपणाका राग ही बजाया था, जिसके लय और ताल पर थिरकते हुए शुद्ध श्रद्धा, सम्यक् ज्ञान एव उत्तम चारित्रके अनेक गुणोकी प्रतिमूर्ति रूप उनके आदर्श जीवन व्यवहार द्वारा विश्वके सकल जीवोका शाश्वत धर्मसे कल्याणकारी परिचय करवानेकी अत्यन्त तीव्र ललकका लास्य नर्तन हो रहा था। परिणामत लोकभाषाको सदैव सम्माननीय और आदरणीय स्थान प्रदान करनेवाली जैन सास्कृतिक और साहित्यिक परपराके अनुसरण स्वरूप आपने भी तत्कालीन जनभाषामे अपने जैन-धर्माश्रयी सैद्धान्तिक विचारोका प्रवाह प्रवाहित किया । कहा जाता है कि उनकी मधुप्रश्रवा वाणीके अमृत-पानानतर कोई भी धर्मी-भ्रमर, धर्म श्रवण रूप **मधुसचय** हेतु और कही पर भी नही जा सकता *"जैन तत्त्वादर्श" ग्रन्थके प्रासगिक वक्तव्यमे श्री बनारसीदास जैनने अपने उद्गार व्यक्त करते हुए लिखा है कि*—**"मेरा अनुमान है कि, जिस भाषामें वे अपना उपदेश देते होंगे, उसीमें उन्होंने इस ग्रन्थकी रचना भी की है ।"**

उस समय जब विदेशी भाषाओके विषैले प्रचार-प्रसार रूप विकट विपत्तियो और हिन्दी विरोधी बवडरोके बीच हिन्दी भाषाकी किश्ती स्थिरत्व प्राप्ति हेतु पुरुषार्थशील बन चुकी थी, तब उस प्रचड तेजस्वी, बुद्धि वैभवके स्वामी विश्वके प्रधान विद्वानोकी श्रेणिके सुधारक महात्माने भी तत्कालीन लोकभाषा-हिन्दी-को ही प्राथमिकता एव प्रमुखता प्रदान करके अपने प्रभावी-प्रतिभा सम्पन्न विचार और वाणीको वाड्मयकी विभिन्न शैलियोमे आबद्ध करते हुए आत्म कल्याणके मार्गको प्रशस्त करनेमे यथासभव उत्कृष्ट योगदान दिया, जो उन्हे हिन्दी साहित्यके प्रथम गद्य लेखक बननेका सौभाग्य बक्षता है : **"आपने (श्री आत्मानंदजी म.सा.ने) हिन्दी भाषामें ग्रन्थ लिखकर न केवल धर्मका उद्धार किया और हमारी आत्माको प्रकाश दिखाया, किंतु उन्होंने हिन्दी भाषाके विकास और उन्नतिमें अनायास ही महान सहयोग दिया है । जैन संप्रदायमें हिन्दी (खड़ीबोली)के सबसे पहले ग्रन्थ लिखनेका श्रेय उन्ही महात्माको ही है ।"**

राष्ट्रभाषा हिन्दीके प्रारम्भिक गद्य विकासमें आचार्य प्रवरश्रीका योगदानः—

बौद्धिकताका व्यावहारिक जीवनापेक्षया कम विकास, तत्कालीन जन मानसकी अत्यधिक भावुकता, धर्मनिष्ठता और काव्यप्रियता सस्कृत-प्राकृतादिकी पद्य-प्रश्रय प्रवृत्ति, साहित्यको कठस्थ रखनेकी परपरा और विभाषाओमे व्याख्यानुवादकी प्रबल प्रवृत्तिके अभावके कारण भक्तिकालमे साहित्यिक गद्यका विकास पर्याप्त परिमाणमे न हो सका आधुनिक गद्यके निखार और विषय वैविध्यकी तुलनामे भक्तिकालीन गद्य नगण्य प्रतीत होता है । प्राप्त गद्य भी अधिकतर ब्रज पजाबी या राजस्थानीसे प्रभावित और अरबी-फारसी या सस्कृतकी तत्सम-अर्धतत्सम शब्दावली युक्त तीन रूपोमे– (१) तुकमय पद्याभास युक्त (२) गद्य प्रधान (जिसमे पद्यकी क्षुल्लकता) या पद्य प्रधान (जिसमे पद्यकी बहुलता) हो, (३) शुद्ध (पूर्ण) गद्य रूपमे—दृष्टिगोचर होता है । रीतिकालमे भी गद्य विषयक परिस्थिति इससे अधिक प्रगतिशील नही है । *'हिन्दी साहित्यका इतिहास' सपा डॉ नागेन्द्र-पृ ४१९ से ४२१ पर किये गये* ***"खडीबोली गद्य"*** *के विकासकी चर्चासे फलित होता है कि*

रीतिकालीन खड़ीबोली गद्य अधिकांशतः टीकानुवादोंके रूपमें प्राप्त होता है, जिनमें जैन गद्य साहित्यकारोंका विशिष्ट योगदान रहा है। मध्यकालीन खड़ीबोलीके विशिष्ट जैन गद्यकार टोडरमलजी, दीपचंदजी, दौलतरामजी (बसवावाले), इन्दौरवासी दौलतरामजी, टेकचंदजी, अभयचंदजी आदिके साहित्यमें विविध महापुरुषोंकी जीवनी पर वचनिकाओंकी रचनायें और अखयराज, श्री जिन-समुद्र सूरिजी आदिकी टीकायें-टिप्पणियाँ आदि स्वरूपोंमें दार्शनिक-सैद्धान्तिक, भूगोल-खगोल, ज्योतिष-गणितादि मौलिक-अमौलिक रचनायें समाहित होती हैं, जिनकी भाषा ब्रज या पंजाबी-राजस्थानी मिश्रित खड़ीबोली है।"

आधुनिककालमे–उन्नीसवी शताब्दीमे–सामाजिक, राजकीय, आर्थिक क्षेत्रोमे अंग्रेजोकी नूतन व्यवस्थाके कारण आर्थिक वर्ग विभाजन और जातीय प्रथादिके संघर्षोके फलस्वरूप अर्वाचीन प्रतिभाओंका उद्भव हुआ जिसका असर साहित्य और भाषा पर होना अनिवार्य था। एक ओर राष्ट्रीय एकताके आंदोलनके परिणाम स्वरूप जागरणकी नयी लहरकी भावाभिव्यक्ति सक्षम भाषाका सबल ढूंढ रही थी, दूसरी ओर उन्नीसवी शती पर्यंत हिन्दी खडीबोली अपना स्वस्थ परिष्कृत एव परिनिष्ठित स्वरूप निर्माण नही कर सकी थी फिर भी स्थिरत्वकी ओर पुरुषार्थी एव प्रगतिशील अवश्य थी। इन दोनो परिस्थितियोने हिन्दी भाषाकी नवीन उद्भावना पर महत्त्वपूर्ण असर किया। भारतकी स्वतत्रता पश्चात हिन्दीको राजभाषा बनाया गया और उसके क्षेत्रको विस्तृत करते हुए, उसकी लिपिमे परिष्कार करते हुए, एव उसके शब्द समूहको वृद्धिगत करते हुए हिन्दीको राष्ट्रभाषाका प्रतिष्ठित स्थान देकर सम्मानित किया गया। वर्तमानमे उसके विकसित रूपकी तेजोमय भास्वरतामे उसके परिमार्जन युगके दिदारका खयाल तक आना दुभर है-जब न गद्यका प्रचार था, न भाषाका विकास या समृद्धि, न शैलीकी स्थिरता। भाषाको कोमल, मनोहर प्रभावशाली, रोचक और स्फूर्तिलापन्न प्रदान हेतु अन्य भाषाओके शब्द, क्रिया रूपो, कारक रूपो, वर्ण विन्यास, उच्चारण प्रयोग आदिका उदारता पूर्वक हिन्दीमे स्वप्रकृत्यानुसार अन्वय किया जा रहा था, जिनमे प्रचलित सस्कृत, प्राकृत, गुजराती, राजस्थानी, पजाबी, उर्दू, अरबी-फारसी आदि भाषाओकी प्रधानता स्पष्ट रूपसे दर्शित होती है।

श्री आत्मानदजी म सा का हिन्दी साहित्य क्षेत्रमे पदार्पण उसी, क्रिया-कारकादिके रूप स्वानिक परिवर्तन, अन्य भाषाभाषी शब्द ग्रहण आदिके कशमकशकालमे हुआ था। अत आपने तत्कालीन परिस्थितियॉनुसार अपनी साहित्यिक भाषा-(खडीबोली)मे निजी मातृभाषा-पजाबी एव विचरण क्षेत्रोकी अन्य भाषाये-गुजराती, राजस्थानी, ब्रज अवधि, उर्दू आदिका और तत्कालीन साहित्यिक प्रवृत्त्यानुसार सस्कृत-प्राकृतके तत्सम प्रयोगोका मिश्रण किया है क्योकि उनके साहित्यकी भाषा विषयक लेखमे श्री वनारसीदासजीने अपने विचार प्रस्तुत करते हुए लिखा है -**"जिस भाषामे वे अपना उपदेश देते थे, उसी मे ही उन्होंने साहित्य सृजन भी किया।"** "जैन तत्त्वादर्श" ग्रन्थके प्रथम सस्करणसे प्राप्त कई विशिष्टताये इस विचारकी पुष्टि करती है उपदेशकोकी प्राय ऐसी भाषा प्रवृत्ति वर्तमानमे भी प्राप्त होती है। विशेषत जैन ललित वाङमयके मूल स्रोत रूप श्री अरिहंत परमात्माकी भक्ति-गुणानुवाद-चरितानुवाद एव अन्य क्रियानुष्ठानादिके उपदेश और अललित अथवा दार्शनिक-सैद्धान्तिक ज्योतिष-गणित व्याख्यादि साहित्य सरिताके मूलोद्गम रूप श्री वीतराग-सर्वज्ञ देव द्वारा प्रवाहित वाणी निर्झर अपने असामान्य गुणोसे आप्लावित, अर्थात् प्रमुख रूपसे- अर्थगभीरता, औदार्यता मधुरता सरलता, सात्त्विक शिष्टता, हृदयगमता द्रव्य-क्षेत्र-काल-भावमे प्रस्तावौचित्यता तत्त्वनिष्ठादि प्रशस्य गुणालकृत होते है।

भगवतके चरण-चिह्नो पर ही चलनेवाले और उनकी वाणीको वाड्मय या प्रवचन द्वारा जन-जनमे प्रसारित करके चिरकाल पर्यंत प्राणवान बनाये रखनेमे पुरुषार्थी उनके अतेवासी (प्रभावक साधु) भी अपनी विहार स्थलीमे प्रयुक्त भाषा व बोलियोसे सुपरिचित होते हैं क्योकि जिनाज्ञाश्रित उन आचार्य-साधु प्रवरोकी हार्दिक तमन्ना होती है श्रोतागण (पर्षदा)के अनुकूल वाणी द्वारा समाज कल्याणका ध्येय साधनेकी। श्री आत्मानदजी म ने भी अपने साहित्यमे इसी परपराका पालन करके राष्ट्रभाषाके प्रारम्भिक विकासमे अपना योगदान दिया है। इनकी परिमार्जित शैलीके अतर्गत शब्द (सज्ञा) प्रयोग, क्रियादिके कुछ उदाहरण प्रस्तुत है–यथा–

"ए सब मिलकर तीन सौ त्रेसठ मत हुए, ए सर्व मतधारी तथा इन मतोंके प्ररूपणेवाले सर्व कुगुरु हैं क्योंकि, ये सर्व मत मिथ्या दृष्टियोंके हैं । ये सब एकान्तवादी हैं और स्याद्वाद-अमृत स्वादसे रहित हैं ।"[51] कर्मबंधके कारणोंकी विवक्षा करते हुए लिखते हैं -**"तीसरा कषाय बंध हेतु है । उनके सोलां कषाय, अरु नव नोकषाय मिलकर पचीस भेद हैं–अनंतानुबंधी क्रोध, मान, माया, लोभ–ऐसे ही अप्रत्याख्यान क्रोधाधि चार, प्रत्याख्यान क्रोधादि चार, और संज्वलन क्रोधादि चार–एवं सोलह कषाय; इनके सहचारी नव नोकषाय हैं–उनका नाम कहते हैं-हास्य, रति, अरति, भय, शोक, जुगुप्सा, स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नपुंसक वेद । इन सर्वका व्याख्यान पीछे लिख आये हे । इनसे कर्मका बंध होता है, यही संसार स्थितिका मूल कारण है।"**[52]

विश्व सृजनके लिए आपने 'जैनधर्म विषयक प्रश्नोत्तर' में लिखा है **जगत तो प्रवाहसे अनादि चला आता है, किसीका मूलमे रचा हुआ नही है । काल, स्वभाव, नियति कर्म, चेतनका पुरुषार्थ-आत्मा और जड़ पदार्थ-इनके सर्व अनादि नियमोंसे यह जगत विचित्र रूप प्रवाहसे चला हुआ उत्पाद-व्यय-ध्रुव रूपसे इसी तरे चला जायेगा ।"**[53] जैन धर्मकी प्राचीनताके विवेचनमे आप लिखते हैं –**"मेरे मत मूजब जैसे प्राचीन बोद्ध, निर्ग्रंथोंको एक अगत्यकी और पुरानी कोम तरीके जानते थे तेमे ही गोशालेने भी निर्ग्रंथोंको बहुत अगत्यकी और पुरानी कोम तरीके जानी हुई होनी चाहिए । इस मेरे मतकी तरफेणमें आखिर दलील है, जो बोद्धोके मझिम निकायके पैंतीसवें प्रकरणमें बुद्ध और निर्ग्रंथके पुत्र सच्चकके साथ हुई चर्चाकी बात लिखी हुई है । जब वह-नामांकित वादी, जिसका पिता निर्ग्रंथ था, सो बुद्धके वखतमें हुआ, तब निर्ग्रंथोकी कोम बुद्धकी जिंदगीकी अंदर स्थापनेमें आई होवे, यह बन नहीं सकता ।"**[54]

उपरोक्त विभिन्न ग्रन्थोके उद्धरणोसे प्रतीत होता है कि आचार्य प्रवरश्रीकी भाषा बोलचालकी भाषा सदृश कही-कभी लडखडाती, फिर भी निश्चित रूपसे अपने विकासपथ पर अग्रसर होती हुई परिनिष्ठ हिन्दीके रूपसे समीपस्थ स्थान प्राप्त करनेके लिए उपयुक्तता रखती है । साहित्यिक रचना शैलीके दृष्टिकोणसे विकासशील भाषामे गूढ-विवादग्रस्त-दुरूह-पेचीदा धार्मिक और दार्शनिक-सैद्धान्तिक विषयोको, अत्यन्त धार्मिक लागणीशील जनसमूहके सम्मुख, उसके यथार्थ एव सत्य रूपमे पेश करना अत्यन्त दुष्कर कार्य है, जो विशिष्ट प्रतिभा सम्पन्नताकी अपेक्षा रखता है । **"इन सब बातोंके होने पर भी डॉक्टर साहबका मत है, कि उनकी भाषामें साहित्यिक भाषाके सब गुण विद्यमान है । इसमे सूक्ष्मसे सूक्ष्म और गूढ़से गूढ शास्त्रीय अर्थ प्रकट करनेकी पूर्ण क्षमता हैं । महाराजजीकी गद्य शैली अति गंभीर और परिवक्व है, जो शिथिलता, विषमतादि दोषोंसे रहित है ।"**[55] *आचार्य प्रवरश्रीकी हार्दिक अभिलाषा–राष्ट्रभाषा 'हिन्दी' को सम्यक गिरा' बनाना–को उन्होने स्वय अभिव्यक्त करते हुए लिखा है–*

"यद्यापि बहुभिः पूर्वाचार्यैः रचितानि विविध शास्त्राणि,

प्राकृत-संस्कृत भाषामयानि नयतर्कयुक्तानि:

तदपि मयेदं शास्त्रं पूर्व मुनेः पद्धति समाश्रित्य,

भव्यजन बोधनार्थ रचितं 'सम्यक स्वदेश गिरा ।"[56]

इस प्रकार राष्ट्रभाषाके विकासमे पुरुषार्थशील श्री आत्मानंदजी म.सा. के श्लाघनीय प्रयत्नो के किये गए निरूपणकी पुष्टिकर्ता श्री रघुनंदन शास्त्रीका अभिमत भी प्रस्तुत है

"पंजाबमें हिन्दीके प्रसारमें जेनधर्मका कार्यभी विशेष रूपसे श्लाघनीय है । आचार्योंने जेनधर्मका प्रचार विशेषतः हिन्दी द्वारा ही किया है । जेनधर्मके पचासो जीवनचरित्र, धार्मिक उपदेश, गीत, कविता, भजनादि हिन्दीमे प्रकाशित हुए है । इनके आचार्य श्री विजयानद सूरि अथवा श्री आत्मानदजीने बीसियों ग्रन्थ हिन्दीमें लिखे हैं।"[57]

ग्रन्थ रचनाओंका उद्देश्य (तत्कालीन समाजकी तकाजापूर्ति) –– सकलशास्त्र-पारगामी प्राज्ञके अभावयुक्त तत्कालीन भ्रान्तिजन्य अज्ञान और संभाव्य विकट-विषम एव विषैली यथार्थ सामाजिक परिस्थितियोके पर्यवेक्षक, प्राचीन-अर्वाचीन युगके सेतुबंध, जवामर्दजंगम आगमिक जनरेटर तुल्य, युगप्रभावक श्री आत्मानदजी म.के लिए

प्रयुक्त डॉ रुडोल्फ की पंक्तियाँ दर्पण स्वरूप हैं. जिनमे जैन-जैनेतर दर्शनियो द्वारा जैन दर्शनके प्रति मनमाने भ्रमात्मक, असत्य और अनुचित आक्षेपोके बवड़रको वेतरतिब करके जिनशासनके उज्ज्वल और महान सत्यादर्शौकी रक्षा हेतु प्रामाणिक-सत्य और पक्षशून्य ज्ञानालोकका आश्रय लेकर किये गये भगीरथ पुरुषार्थका प्रतिबिम्ब झलकता है–

"दुराग्रह ध्वान्त विभेदमानो, हितोपदेशामृत सिन्धु चित्त ।
संदेह संदोह निरासकारिन्, जिनोक्त धर्मस्य धुरंधरोऽसि ।।"

तत्कालीन समाजमे व्याप्त सामाजिक कुरिवाजो, कुरूढियों और कुसस्कारोके परिहार हेतु अपने विशाल अध्ययन और ठोस ज्ञानका लाभ वितरित करके समाजमे सस्कार सुधार परिष्कारके बीज वपन किये इसके साथ ही अज्ञानतिमिर निवारण-इलाज रूप ज्ञानालोकका प्रसार किया । सोलह सस्कार स्वरूप आत्मा परमात्मा विषयक निरूपणान्तर्गत परमात्म भक्ति और आत्म समर्पण तथा आत्मिक विकासश्रेणि सूचक चौदह गुणस्थानक स्वरूप गृहस्थ (श्रावक) और साधु (श्रमण)का जीवनचर्याकी चर्चा, षट्द्रव्य, कर्म विज्ञान, धार्मिक अनुष्ठानो एव ध्यानादि अनेक विषयक विशिष्ट निरूपणोके विवरणादि अनेकविविध विषयक अत्यन्त विशद साहित्यकी रचना की, जिससे हिन्दी जगतको जैन वाड्मयके विभिन्न आश्चर्यजनक, अभूतपूर्व विषय वैविध्यका परिचय प्राप्त हुआ ।

आगम प्रभाकर श्री पुज्यविजयजी म सा ने ज्ञानभंडार विषयक अपनी अनुभवी दृष्टिसे किये निरीक्षणो को वर्णित करते हुए लिखा है –**"मेरे देखे हुए ग्रंथोंमें ताड़पत्रीय ग्रन्थोंकी संख्या लगभग तीन हज़ार जितनी और कागज़ो परी ग्रन्थोंकी संख्या तो दो लाखसे कहीं अधिक है । यह कहनेकी जरुरत नहीं कि, इसमें सभी जैन फिरकोंके सब भांड़ारोंके ग्रन्थोंकी संख्या अभिप्रेत नही है । वह संख्या तो दस पंद्रह लाखसे भी कही बढ जायेगी ।"**[६०] इतने विशाल-विविध विषयक अनेक-विध ग्रन्थ-रूप साहित्यमे कितनी अगाधता औरप्रचुरता निहित होगी यह वाकयी कल्पनाका विषय है उस अपार ज्ञानराशिके रत्नाकरका आकठ पान करके मस्तिष्कमे कैद करना ही विशिष्ट प्रतिभाका परिचय करवाता है, जिसे जैन साधु (या श्रावक भी) पुनरावर्तन रूपमे स्वाध्याय परपरासे-ज्ञानारणीय कर्म निर्जराका हेतु मानकर, विद्यमान रखनेमे सफल होते है।

'चिकागो प्रश्नोत्तर', 'जैनधर्म विषयक प्रश्नोत्तरादि', ग्रन्थोकी रचना हुई देशकालानुसार-तत्कालीन समाजकी तकाजापूर्ति हेतु (आवश्यकताके महदुद्देश्यसे) और 'सम्यक्त्व शल्योद्धार' 'चतुर्थ स्तुति निर्णय भाग-१-२', 'ईसाई मत समीक्षा', 'अज्ञानतिमिर भास्कर' आदि प्रतिकारात्मक प्रवृत्तिरूप, 'बृहत् नवतत्त्व सग्रह', 'जैन तत्त्वादर्श', 'जैनधर्मका स्वरूप', 'तत्त्वनिर्णयप्रासाद' आदि सस्कृत-प्राकृत ग्रन्थोके हिन्दीमे आगमिक ज्ञानोद्धार और तत्त्व जिज्ञासुओकी तृप्ति हेतु 'जैन मत वृक्ष' जैसी आन्वेक्षिकी कृति निजात्मानद या आत्म परितोष हेतुकी गई है ।

निष्कर्ष :– इस प्रकार हिन्दी भाषाके विकासकी परम्परामे अपना महद योगदान प्रदान करके राष्ट्रभाषा हिन्दीकी महान सेवा करनेवाले सूरि सम्राट द्वारा विरचित वाड्मयके अवलंबनसे विविध उद्देश्यपूर्तिमे सफलता प्राप्तिके कारण उनके साहित्यको उत्तमताके साथ नितान्त समाजोपयोगिता एव अत्यन्त लोक प्रियता प्राप्त हुई है । अत यह प्रतीत होता है कि स्व-पर कल्याण साधकने शासन सेवाके साथ जिनेश्वरोके प्रति अपनी अथाग आस्थाको प्रस्फुटित करके विश्व कल्याणमे आत्म समर्पण किया है ।